ज़िद्दी

ज़िद्दी—उर्दू की प्रसिद्ध कथाकार इस्मत चग़ताई का पहला लघु-उपन्यास है, जिसका फ़िल्म भी बना और बॉक्स आफ़िस पर हिट हुआ।

ज़िद्दी—ऐसे प्रेम का चित्रण करता है जो न वर्ग को देखता है, न समाज को, जो घुलकर ख़त्म हो जाता है, पर समाज के अन्याय को नहीं मानता।

ज़िद्दी

इस्मत चग़ताई

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९६०

मूल्य ।

प्रकाशक :
नीलाभ प्रकाशन,
५–ख़ुसरो बाग़ रोड, इलाहाबाद
मुद्रक :
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स
३, क्लाइव रोड, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

इस्मत चग़ताई का नाम हिन्दी भाषियों के लिए नया नहीं। उर्दू कहानी के क्षेत्र में उनका शीर्ष-स्थान है, पर इधर वर्षों से उनकी कहानियाँ हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में भी निरन्तर छपती आ रही हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार कृष्णचन्द्र, मंटो, अब्बास और बेदी की तरह इस्मत भी विभाजनोपरान्त फ़िल्म में जाने को विवश हुईं और उनके कई फ़िल्म बॉक्स-आफ़िस पर हिट हुए। लेकिन उन्होंने साहित्य का दामन नहीं छोड़ा। आज भी उनके अफ़साने लगातार पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं।

विभाजन के बाद उर्दू-साहित्य के प्रकाशन को बड़ा धक्का लगा और हिन्दी न जानने के कारण बहुत देर तक उर्दू-कथाकारों की रचनाएँ संकलित रूप से हिन्दी में नहीं आ सकीं। इधर कुछ वर्षों से नीलाभ प्रकाशन ने अश्क जी की देख-रेख में सभी प्रसिद्ध उर्दू-कथाकारों को हिन्दी में लाने का बीड़ा उठाया है। अब्बास के लगभग सभी कहानी-संग्रह 'नीलाभ प्रकाशन' से छप चुके हैं, बेदी का दूसरा कहानी-सग्रह 'दीवाला' तैयार है। इस वर्ष इस्मत के कम-से-कम दो ग्रन्थ हिन्दी पाठकों के सम्मुख रखने का हमारा प्रोग्राम है।

ज़िद्दी इस सिलसिले की पहली कड़ी है। इस्मत का यह पहला लघु-उपन्यास है, लेकिन लोकप्रियता में उनकी किसी अन्य रचना से पीछे नहीं। इसका फ़िल्म भी बना और बॉक्स-आफ़िस पर हिट हुआ।

उर्दू कथाकारों में इस्मत चग़ताई का अपना स्थान है और उनका नाम मंटो के साथ लिया जाता है। मध्यवर्गीय मुसलमान परिवार की

पर्दे के पीछे छिपी औरत के मनोविज्ञान का, उसकी यौन कुण्ठा का चित्रण कुछ ऐसी यथार्थता, निस्संकोचता से इस्मत ने किया कि उनके शुरू के अफ़सानों ने उर्दू दुनिया में तहलका मचा दिया।

लेकिन इस्मत ने केवल सेक्स ही को लेकर कहानियाँ लिखी हों, ऐसी बात नहीं। उनके प्रसिद्ध अफ़साने—नन्हीं की नानी, बिच्छू फूफी, और उनका प्रस्तुत लघु-उपन्यास इसके प्रमाण हैं।

मनोवैज्ञानिक सत्यों को बेबाकी से अंकित करने के अलावा, इस्मत का कमाल उनकी बोल-चाल की प्रवहमान भाषा में है। इस्मत किताबी भाषा नहीं लिखतीं। उन्होंने यू० पी० में जन्म लिया, जहाँ उर्दू-हिन्दी दोनों जन्मीं, पलीं और परवान चढ़ीं, इसलिए इस्मत की भाषा में कुछ अजीब-सी सरलता, अनायासता, प्रवाह और मोहिनी है।

वर्ग-समाज को परिपार्श्व में रखकर इस्मत ने ज़िद्दी में ऐसे प्रेम का चित्रण किया है, जो न वर्ग को मानता है, न समाज को। यह चित्रण इतना सफल हुआ है कि उपन्यास समाप्त करते-न-करते आँखें अनायास भीग जाती हैं।

शीघ्र ही हम इस्मत की कहानियों का पहला संकलन पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करेंगे।

प्रकाशक

पूरन

पानी जान तोड़कर बरस रहा था। लगता था, आसमान में सूराख़ हो गये हैं। सच भी है, कब से तना खड़ा है! सड़-गलकर छेद हो जायें तो अचरज ही क्या? कई रात बरसता रहा, और सुबह से बरस रहा था। ज़ोर-ज़ोर से, मानो कोई पूरी ताक़त से पानी के समुद्र भर-भर धरती पर पटक रहा हो। कच्ची दीवारों के घर तो कभी के पानी के तमाचों से बेदम होकर बैठ गये। छप्पर गीली दाढ़ियों की तरह बाँसों और बल्लियों से झूल पड़े और घरवाले पेड़ों के नीचे दुबक बैठे। पर पानी जैसे उनसे छेड़ कर रहा था। पेड़ भी कोई पत्थर के सायबान तो नहीं थे कि पानी पत्तों को चीर-फाड़कर सिरों पर न गिरता। जैसे कोई चुल्लू भर-भरकर पेड़ों के नीचे भी पानी उलीच रहा था। परनालों की चीख़-पुकार से और भी होश गुम थे। और फिर रात आ रही थी। घटाटोप सियाही गाढ़ी होती जा रही थी। घर तेज़ी से लुढ़क रहे थे।

आशा नानी को अंतिम घूँट पानी देने का प्रयास कर रही थी। माँ तो न जाने कब की मर गयी थी, पर यह नानी ही उसके लिए माँ-बाप, सभी कुछ थी। अब नानी भी चल-चलाव पर तुली थी, और बाप बेकार, निखट्टू-सा था। एक दिन स्टेशन के पास मरा हुआ पड़ा मिला। नानी बहुत-कुछ उसे देती थी, पर अब वह भी बूढ़ी हो चली थी। यह बात तो थी कि वह राजा साहब की खिलाई रह चुकी थी और राजा साहब के बाद उनके बेटों को भी उन्हीं सूखे-मारे घुटनों पर वही सड़ी-पुरानी लोरियाँ दी थीं, जो वह उनके बाप को दे चुकी थी। पर वह ख़र्चीली थी। और फिर कोई जागीर थोड़े ही मिल गयी थी! ज़ेवर थोड़ा-थोड़ा करके खाया। बर्तन रखने की ज़रूरत ही क्या थी? उम्र-भर राजा साहब के यहाँ रही और बुढ़ापे में कौन सोने के थाल लगाता है? कई साल से महल के कोने में पड़ी सड़ रही थी। राजा साहब ने दया करके उसे पेंशन देकर गाँव भेज दिया। कुछ भी था, उसे सन्तोष था कि वह अपने गाँव में मर रही थी। अपना गाँव कहाँ, गाँव तो राजा साहब का ही था।

"नहीं आया, अभी नहीं आया..."

आशा समझी, बुढ़िया यमदूत को याद कर रही है। पर वह पूरन के बारे में सोच रही थी। पूरन राजा साहब का सबसे छोटा लड़का था। वह अच्छा-खासा छै-सात बरस का हो गया था, तब भी बूढ़ी अम्माँ के साथ सोता था। वह हर इतवार को बड़े भाई के साथ गाँव आया करता था। और आज इतवार था, बुढ़िया न जाने क्यों उसका इन्तज़ार कर रही थी और इसी लिए ठहरी हुई थी, नहीं तो उसे

क़ायदे से तो बहुत पहले मर जाना चाहिए था।

"रंजी की माँ कहाँ है ? गयी ?" बुढ़िया फिर जागी।

"हाँ, अम्माँ, क्या बुला लाऊँ ? मेंह पड़ रहा है।"

"नहीं।...पर है बड़ी...वह...ऐसे...छोड़ गयी ?" साँस घुटी जा रही थी—"क्या मेंह बहुत पड़ रहा है ?" बुढ़िया को चिन्ता हुई कि अब जलायी कैसे जायेगी ?

"हाँ," सहमी हुई आशा धोती का किनारा मरोड़ रही थी।

"और जाने रंजी की माँ कहाँ मर गयी !"

न जाने रंजी की माँ पर इतनी ममता क्यों आ रही थी ! रंजी वैसे तो थे रणजीत, और सिंह बनियापन छिपाने को लगाया गया था, पर कहलाते 'अबे रंजी' थे। और यह माता जी खिरिया की दुल्हन, मोती की बहू और रामभरोसे की पत्नी और न जाने कितनी जगहें बदल चुकी थीं ! पर सब अभागे मर-मर गये और उनमें से किसी एक की यादगार रंजी थे। समाज में उनकी हैसियत भी थूहड़ के पेड़ की-सी थी। ज़्यादा कारामद बनने की उनमें उमंग ही न थी। छुटपन में कुछ दिन हिजड़ों की टोली में जा घुसे और रंजी की माँ को सारा दिन मुहल्ले वालों को गालियाँ बाँटने में बीत जाता। न जाने क्यों, उनको ज़िद थी कि वह हिजड़ों की टोली में नहीं, बल्कि नौटंकी में गये हैं, जो छोटा-मोटा थियेटर होता है। वहाँ भी रंजी की निभी नहीं और वह पिटकर भाग आये और अब गाँव-भर में अपने गाने के लिए मशहूर थे। और फिर एकदम विद्रोही विचार ! कहाँ हिजड़ों की टोली में थे और कहाँ अब अव्वल नम्बर के गुण्डों में गिने जाते थे। कुछ भी था, पर उनकी

माताजी तो सिर उठाकर चलती थीं।

बुढ़िया की बेचैनी बेकार न गयी और वह बोरा ओढ़े आ पहुँची।

"कहाँ चली गयी थीं ?" बुढ़िया यमदूत की तरह ग़ुर्रायी।

"ऐ, ज़रा देखने गयी थी कि रंजी लौटा कि नहीं। लच्छमी की माँ के पास गयी थी। हरामी न जाने कहाँ मरा है जाकर !"

"हूँ !...चाहे मैं मर जाती !" बुढ़िया अकेली आशा के सामने नहीं मरना चाहती थी कि कहीं उसका दिल न दहल जाये। और दूसरे उसका डाँटना भी सही था। रंजी आशा पर आशिक़ थे। बुढ़िया को पहले तो बहुत बुरा लगा, पर फिर सिर घुमाकर देखा तो और कौन-से हीरों-जड़े थे ! यह भी बात थी कि रंजी लुच्चा होगा अपने घर का। आशा से छेड़ करने की उसमें कभी हिम्मत न हुई। आशा बाहर भी कब जाती थी ! बुढ़िया साँप बनी उसकी रक्षा कर रही थी। सारा काम रंजी की माँ घूस में करती थी और रंजी जब कभी आता, गधे की तरह सिर झुकाकर बैठ जाता। बुढ़िया राज़ी ही-सी थी, पर अभी नहीं। अभी आशा थी ही कितनी बड़ी ! दो साल हुए, उसने बाक़ायदा धोती पहननी शुरू की, नहीं तो लहँगा पहने ज़रा-सी बच्ची लगती थी। पर रंजी की माँ की राय में लहँगे-साड़ी से कुछ नहीं होता। जब वह इतनी थी तो दो बच्चे गिर चुके थे और तीसरा होने को था।

"अपनी-अपनी उठान है," बुढ़िया जब अच्छी होती तो उनकी हिम्मत का रोब खाकर कहती थी—"आशा मेरी धान-पान है !" और वह रंजी का गेंडे-जैसा मस्तक देखकर सहम जाती।

रंजी बुरा भी न था। हुस्न का मुक़ाबिला तो हो नहीं रहा था।

ठिगना ज़रूर था और बत्तीसी ज़रा लौटी हुई थी। नीचे के दाँतों की जगह ऊपर के दाँत अन्दर थे और ठोड़ी ज़रा आगे को थी। जब हँसता था तब लगता था, मानो किसी ने गला उलटा कर दिया है। और होंठ तो दोनों एक जैसे ही सपाट थे। नाक थोड़ी नीची और फैली हुई थी, पर आँखों में रस था। और बाल! आजकल बड़े लोगों में जिसे देखो, गंजा होता चला जाता है, लेकिन हफ़्तों न धोने पर भी धूल में अटे हुए कोई दो सिरों के बाल तो होंगे ही।

"पूरन नहीं आया?" रंजी की चर्चा से ऊबकर विषय बदला।

"हय! भला वह इस पानी में आयेंगे? बड़े आदमी किसी के भी नहीं होते, सच तो यह है!"

बुढ़िया में दम होता तो वह इतना लड़ती कि रंजी की माँ पस्त हो जाती। अन्धी कहीं की, कोढ़िन! और वह जो हर इतवार को आता था तो क्या उसे दिखायी न देता था? आते ही वह अचार की हंडिया टटोलता और बढ़िया घी की फ़रमायश करता। बढ़िया घी और लड़ाई के समय में! भला कहाँ से आये? न जाने यह लड़ाई में घी का क्या खर्च है? तोपों में भर-भरकर मारते होंगे। भला घासलेट क्यों नहीं भरते? आदमी तो खायें घासलेट और तोपें......हाँ, तोपें ही हुई! लाल अंगारे-जैसे मुँहवाली तोपें! ज़रा बोलो तो आग उगलने लगें ये गोरे! लो, यह घी के ज़िक्र पर गोरे कहाँ से आ टपके?

हाँ, तो पूरन हर इतवार आता था। आज बूढ़ी खिलाई को उसका इन्तज़ार था तो मेंह बरसने पर तुल पड़ा।

"वाह, तुझे क्या पता? आयेगा वह ज़रूर! ज़रा देख

कहीं......"

"ऐ-है ! कहीं भी नहीं आया !" रंजी की माँ उठने के डर के मारे जल्दी से बात टालने लगी— "कुछ खाया भी ? क्या हाल हो गया है !" उसने चाहा बुढ़िया को मौत की याद दिलाकर धमकाये ।

इन्तज़ार की कुछ ही घड़ियाँ बीती थीं कि राजा साहब की मोटर की आवाज़ आयी । बुढ़िया में जैसे थोड़ी देर के लिए दम आ गया । वह मोटर की आवाज़ को ख़ूब पहचानती थी । मोटरें आती ही कब थीं गाँव में ! और कुछ ही क्षणों बाद पूरन सड़े-बुसे पलंग पर प्रेम के साथ बुढ़िया के पास बैठ गया ।

"अम्माँ, यहाँ ठीक से इलाज नहीं हो रहा है ! तुम्हें लेने आया हूँ !"

बुढ़िया तो जाने को तैयार थी, पर कोई पूरन से भी ज़बरदस्त हाथ उसे तेज़ी से घसीट रहा था ।

"अब तो मैं परमात्मा के चरणों में चली, बेटा..."

"कैसी बातें करती हो ? और तुम तो कहती थीं कि पूरन की बहू लाऊँगी, उसका बेटा खिलाऊँगी ! और फिर अब क्या परमात्मा से छुट्टी लेकर आओगी ? बस, आज ही चलो ! वहाँ तुम्हारा इलाज यों हो जायेगा !" पूरन ने चुटकी बजाकर कहा ।

"अब मेरा इलाज दुनिया के किसी डाक्टर से न होगा । मेरी बात सुन......"

"नहीं, अम्माँ, तुम......"

"सुन, मेरे लाल !...आशा मेरी...मेरी बच्ची ! मैंने उसे बड़ा

खिलाया है ! बड़ी प्यारी बच्ची है ! उसे राजा साहब के चरणों में पहुँचा देना ! उसे दुख न देना ! मेरी...और कहीं अच्छा लड़का ढूँढ़कर इसका ब्याह कर देना। अब इसके दुनिया में तुम ही लोग हो।"

पूरन मृत्यु के लक्षण भी न पहचानता था—"तुम आप ही चलो।"

"मैं...मैं तो जाऊँगी।...पर...रंजी ही ढंग का होता......"

"रंजी दुकान करने की सोच रहा है। बनिये ने वादा किया है।" रंजी की माता जी बोलीं—"दो दिन में चल निकलेगी।"

यद्यपि रंजी कई दुकानें कर चुके थे, पर जितने दिन माल चलता, दुकान भी चलती और फिर जब सब खा-पी चुकते तो दूसरा धन्धा अपनाया जाता। दही-बड़ों का खोंचा लगाया, दिन-भर चख-चख कर ही ख़त्म कर दिया। सिगरेट-बीड़ी की दुकान दोस्त-यार फूँक गये। जेब के दाम भी गये।

"हाँ, जो रंजी किसी करम का हो जाये तो बुरा नहीं।"

"देखा जायेगा, अम्माँ। पहले अच्छी तो हो जाओ।"

बुढ़िया को अच्छी होने से कोई दिलचस्पी ही न थी, और होगी भी तो मौत को सख्त जल्दी थी। और जब आशा को सिसकता छोड़कर बुढ़िया चल दी तो पूरन की फ़रमायश धरी रह गयी।

रंजी की माँ इतना चीखी कि आशा भी सहमकर चुप हो गयी। ऐसे शोक मनानेवाले भी कौन थे ! पेड़ सूख गया तो पत्तियाँ भी इधर-उधर बिखर गयीं। और आशा ज़िन्दगी के नये रास्ते पर चलने

के लिए पूरन की मोटर में राजा साहब के यहाँ चल दी। रास्ते-भर वह कोने में दुबकी आँसू पोंछती रही। पूरन को उसकी तरफ़ देखने की हिम्मत भी न हुई कि कहीं वह और न रोने लगे।

पर जब आशा महल में पहुँची तो उसका धड़कता हुआ कलेजा कुछ पल के लिए रुक गया। राजा साहब ने स्नेह से हाथ फेरा और माता जी ने पास बिठा लिया। पर भाभी—भाभी ने तो सचमुच कलेजे से लगा लिया।

छोटी उम्र में शोक, और वह भी बूढ़ी नानी का, थोड़े ही दिन में जाता रहा और साथ की दूसरी नौकरानियों, काम-काज और भाभी के बच्चों के प्रेम में और भी कुछ ज़्यादा याद न रहा और आशा एक सीधा-सादा, शान्तिपूर्ण जीवन बिताने लगी।

●

भाभी

आशा के न कोई भाई था, न बहन, फिर भाभी का सवाल ही क्या उठता। पर वह जब कभी घर की चंचल और हँसमुख बहू को देखती तो उसका दिल प्रेम से डोल उठता। भाभी का क़द मुन्ना-सा, गुड़िया-जैसा था और वैसे ही छोटे-छोटे कमज़ोर हाथ। पर वह नटखट कितनी थी, और ठहाके कैसे गूँजते थे! जैसे चाँदी के मोती आपस में टकरा रहे हों। वह किसी तरह भी तो तीन बच्चों की माँ नहीं लगती थी। निर्मल से थोड़ी ही बड़ी तो लगती थी। और निर्मल भी तब पैदा हो गया था, जब भाभी को सीधे पल्ले की साड़ी पहनना भी न आता था। और शीला—भैंस-की-भैंस! फूल-जैसी माँ की कितनी फूली-कुप्पा बेटी थी! इतना खाती कि माँ तो तीन दिन में भी न खा सकती। और सबसे छोटा बच्चा तो बस ग़ज़ब था! हाँ, वह ज़रा भाभी का बेटा लगता था, क्योंकि उस पर ही वह फ़िदा थी। ऐसे बेतुके बच्चे और पति-देव तो बस बुद्ध की साकार मूर्ति थे। जितना पत्नी हँसती उतना ही वह

चुप रहते। किसी बनिये की परछाईं पड़ गयी थी। सिवाय गाँव की देख-भाल के और कुछ नहीं। बस, मुस्करा देते थे। और भाभी? हर समय तितली की तरह उड़ती फिरती। यद्यपि उसके और पतिदेव के स्वभाव में ज़मीन और आसमान का अन्तर था, पर ऐसी ही शान्ति से निभ रही थी, जैसे ज़मीन और आसमान की निभ रही है। उनकी बला से यदि पत्नी फूहड़, कमउम्र और हठीली थी। वह सास का कहना भी कुछ ऐसा ही मानती। ज़रा-सी बात पर रूठ जाती। मुँह फुलाकर घंटों रोती। देवर से शिकायत कर देती। यहाँ तक कि ससुर की लाडली होने के कारण सास की शिकायत ससुर से भी हो जाती। वह थी भी तो पति से उम्र में छोटी। और देवर से तो उसकी हर समय लड़ाई होती। शादी होकर आयी तो पहला प्यार देवर से शुरू हुआ और पहली लड़ाई भी उससे ही हुई। और उसने शर्म करना तो किसी से सीखा ही नहीं।

सुबह-ही-सुबह यह रंगीन भाभी उठ बैठती और बच्चों पर सफ़ाई का हुक्म दे मारती। और फिर उन्हें नाश्ता कराने में तो वह हलकान हो-हो जाती

"मम्मी, मेरा तोस?" निर्मल चिल्लाता, सूखा-मारा इन्सान।

"और मेरा दूध?" दूध पी-पीकर शीला कचौड़ी हो गयी।

और सबसे छोटा बच्चा हलक़ के आख़िरी सिरे से चिंघाड़ता। बीच में भाभी कुश्ती लड़ती।

"देखो, मम्मी, यह मेरा पापड़ खा गयी!" निर्मल मिनमिनाता।

"ले अपना पापड़, मँगते!" शीला पापड़ मुँह पर मार देती।

"देखो, मम्मी !" निर्मल फ़रियाद करता।

"सूखे टिड्डे !"

"मोटी भैंस !"

"तुम, सूखे टिड्डे ! हवा में एक दिन उड़ जाओगे !"

"और तू मोटी कुप्पा, एक दिन फटाक से फट जायेगी, बस !"

"कुत्ता !"

"उल्लिन !"

निर्मल और शीला एक-दूसरे का ख़ूब मुँह नोचते और बड़ी ही मेहनत से काढ़ी हुई फ्राक पर दूध छलक जाता। और निर्मल का तोस उसकी कोहनी में चिपक जाता। तब भाभी चिंघाड़ती—"क्या अँधेर है, निर्मल के बच्चे ?" और वह चटाचट निर्मल की नंगी रानों पर थप्पड़ मारती और शीला की कमर में धमोके लगाती और जो इसी बीच में कहीं पूरन आ जाता तो बस, भूचाल का मज़ा आ जाता ! वह आते ही निर्मल के उच्छू लगवा देता और शीला की तोंद में उँगलियाँ ठेलता और बच्चे के मोटे-मोटे गाल इतने मसलता कि ख़ून झलक आता।

"हट यहाँ से, आया बड़ा !..." भाभी छोटे-छोटे हाथों से पूरन को ढकेलती—"लेके मेरे बच्चे के गाल लाल कर दिये !"

पूरन उसे और भींचता और वह हँसता।

"देख लो, भाभी, हँस रहा है !"

"है न बेहया !"

"हाँ, बिलकुल अपनी माँ की तरह !" पूरन उसे हवा में उछालता

और साथ-साथ भाभी का जी उछलता।

"हाय, पूरन!...पूरन! मेरा बच्चा!" वह साँस रोक लेती और जब पूरन उसे लटकाकर उसका मुँह दिखाता तो बच्चा हँसता ही होता। और यदि आशा कोई चीज़ लेकर आती या कोई काम करती होती तो पूरन कह उठता—"भाभी, आशा अपनी नौकर तो नहीं। वह काम क्यों करती है?"

"काम क्या हम नहीं करते?"

"बड़ा काम करती हो! बच्चों को पीटना और इसके सिवा तुम्हारे लिए क्या काम है? पर आशा कोई नौकर है..."

"काम करने से कोई नौकर नहीं हुआ जाता। और फिर आशा को ब्याह कर जाना है। वहाँ क्या नौकर लगे होंगे? ग़रीब घर की लड़की!"

"क्यों, ग़रीब घर की लड़की से क्या होता है? वह ग़रीब घर क्यों ब्याहकर जायेगी?"

"ग़रीब घर नहीं ब्याहकर जायेगी तो, पूरन सिंह जी, तुम कहीं से उसके लिए शहज़ादा ढूँढ़ लाना!" वह ऐसे ज़ोर से कहती कि सभी सुन लें। और पूरन डर जाता।

"मैं यह थोड़े ही कहता हूँ, भाभी! तुम तो चीख़ने लगती हो! न जाने तुम्हारा गला क्यों इतना चौड़ा है!" पूरन नीची आवाज़ से कहता और भाभी का बदला बेचारे बच्चे के गालों और शीला की तोंद से लेता।

●

छोटे भैया

बड़ी-बूढ़ियाँ कहती हैं, तितैया मिर्चें अधिक खा लो तो पेट में जो बच्चा होता है, वह बिलकुल तीती मिर्च पैदा होता है। जब पूरन पैदा होने को था तब शायद बड़ी बहू जी ने मिर्चें चाभी थीं। बस, उसे तो किसी कल चैन ही नहीं था। जब तक कालेज में रहा, ख़ैर, तब तक तो बस छुट्टियों में तूफ़ान आता था। पर अब तो वह दो साल से घर पर ही किसी मुक़ाबिले के इम्तिहान की तैयारी कर रहा था। यह धुन भले-चंगे को न जाने कहाँ से हो गयी थी! घर की जायदाद इतनी थी कि बैठकर सात पीढ़ियाँ मज़े से खातीं। पर कालेजों के लड़कों के दिमाग़ गाँव से घबरा जाते हैं। वास्तव में क़सूर अपने गाँव का है। वहाँ है ही क्या, सिवाय मालगुज़ारी के, जिसमें किसी का जी लगे? मूरख, गधों से बदतर इन्सान; मैले, बेढंगे, टूटे, टेढ़े झोपड़े; सड़ाँदी पगडंडियाँ; गन्दे नाले और उपलों की भयानक क़तारें! अधमुए पशु और नंगे बच्चे! भला क्या दिल लगे?

हाँ, तो पूरन की बोटी-बोटी बेकल थी। सारा दिन वह भाभी से उलझता, बच्चों को छेड़ता, छोकरियों से मज़ाक़ करता और चुपके-चुपके बड़े भैया पर फ़िक़रे कसा करता।

"भाभी, सुनते हैं कि भाई साहब जब दुनिया में तशरीफ़ ला रहे थे तो काली बिल्ली रास्ता काट गयी! बस, देख लो..."

"हूँ!...नहीं तो तुम्हारी तरह!...हाथ ही टूटेंगे! मेरी बच्ची का पेट क्या पत्थर का बना है कि सुबह से चुटकियाँ ले रहे हो?"

"तुम्हें तो अपने बच्चों की पड़ी रहती है, बच्चों के बाप की नहीं! भई, बच्चे, कौन मना करता है, हर साल लो! मगर पति महाराज सुबह से पड़े खाता टटोल रहे हैं... भाभी, मैं कहता हूँ, कभी तो हँसते ही होंगे! भाई साहब कभी अकेले में तो..."

" ऐसी जूती मारूँगी, पाजी!" अकेले में हँसने के ख़याल से ही भाभी लाल पड़ जाती।

बड़े भाई ही नहीं, क्या वह नौकरों को छोड़ देता था? चमकी को तो बाक़ायदा चपतें लगाता। शेव करते में साबुन उसके मुँह पर मल देता। उसकी चुटिया पाये से बाँध देता। वह तो, ख़ैर, जवान छोकरी थी, और खिल भी जाती थी छेड़-छाड़ से, पर भोला की तायी का और उसका भला क्या जोड़ था? वह बेचारी टूटे-फूटे काठ-कबाड़ की तरह कोने में पड़ी रहती थी। ढंग से सूझता भी नहीं था। जाड़ों में तो पुराना स्वेटर या कोट पहन लेती होगी, पर चिलचिलाती गर्मी में तो उसे कुर्ते से भी फाँस लगती थी। दालान में धूप भी आ जाती थी और कोठरी में उमस ग़ज़ब की होती, इसलिए वह टूटा हुआ पंखा

लिये दालान में ही ऊँघा करती। पूरन उसके पास जा बैठता।

"अरे भोला की तायी! मैं कहता हूँ, यह जवानी क्यों मिट्टी में मिला रही हो?"

बुढ़िया केवल घुन्नाकर देखती और मुँह फेर लेती कि शायद बेरुखी से बात टल जाये।

"मैं तुमसे कितना कहता हूँ कि...भई, अभी उमर ही क्या है!"

"अरे, हट उधर! मैं कहूँ..."

"यही तो तुम्हारी निठुराई मुझे नहीं भाती!...मैं कहता हूँ..."

"क्या कहता है?" भोला की तायी की आवाज़ बूढ़े मर्द-जैसी थी।

"ऐ, यही कहता हूँ...कि...कि तुम कुर्ता क्यों नहीं पहनती हो? तमाम......" वह कोई आपत्तिजनक बात न पाकर यही कहता।

बुढ़िया ढिठाई से डटी रहती, पर जवान छोकरियाँ यह सुनकर शर्म से गड़ जातीं। भाभी बात टालने को दूसरी ओर देखने लगती, जैसे उसने सुना ही नहीं।

"अरे क्या पहनूँ अब!" बुढ़िया फ़िलासफ़ी छाँटती।

"क्यों नहीं? पहनो!...कहो तो मैं ला दूँ दो-चार पोलके?"

"चल, पोलकों के सगे!" बुढ़िया का मिज़ाज बिगड़ा रहता।

"कितना कहता हूँ, भोला की तायी, कि मेंहदी लगाया करो...सुर्मा ...काजल..."

छोकरियाँ हँसतीं और भोला की तायी मोटी-मोटी गालियाँ बड़-बड़ाती।

"ये तो चुड़ैलें तुमसे जलती हैं, भोला की तायी!" और वह

धीरे-धीरे उसके पास खिसकता।

"अरे, क्यों मुझ पर चढ़ा चला आये है ?...उधर हट, बेटा !"

"मुझे बेटा कहती हो ?" पूरन गम्भीरता से बुरा मानता।

"हाँ, भैया, ज़रा गर्मी है, उधर बैठ।"

"अरे ! भैया कहती हो मुझे ?" पूरन और भी बिगड़ता।

"बेटा न कहूँ, भैया न कहूँ, तो क्या ख़सम कहूँ तुझे ?" और बुढ़िया फिर मोटी-मोटी गालियाँ सुनाती।

"मैं तो कहता हूँ, फेरे करा लो मुझसे!...क्या होगी तुम्हारी उमर ?"

"अरे, क्यों आयी है शामत तेरी ?...हरामी !" बुढ़िया भर्राये हुए स्वर में ग़ुर्राती।

"भोला की तायी ! जब गालियाँ देती हो तो बस जी चाहता है कि मुँह चूम लें ! ...वाह...वाह !"

और फिर गालियों से काम न चलता देख भोला की तायी मारने पर तुल जाती। लौंडियाँ-दासियाँ, सब लपेट में आ जातीं और वह सब को नंगी-नंगी बात कहती, यहाँ तक कि पूरन भी झेंपकर भाग खड़ा होता। बुढ़िया बड़ी बहू जी के पास फ़रियाद लेकर जाती तो छोटी बहू उलटा छेड़ने लगती।

"ए, भोला की तायी ! कर लो न...! ऐसा क्या बुरा है लड़का ?"

पर भोला की तायी कुछ ऐसी बातें कहती कि छोटी बहू सुनने से पहले ही दूसरे कमरे में चली जाती !

चमकी

चमकी उसी गाँव की थी, जहाँ आशा की नानी मरी थी। उसे सब चमकी इसलिए कहते थे कि गाँव की हर तीसरी लड़की का नाम लोग चमकी ही रखते हैं। आप कानी-खुतरी, काली-भुजंग लड़की को देखकर यही सोचेंगे कि इसका नाम ज़रूर कल्लो या रद्धो इत्यादि होगा, लेकिन वह चमकी निकलेगी। पर चमकी थी भी चमकी! उसकी आँखें चमकती थीं, गाल चमकते थे और बाल तो लोहे के पालिश किये तारों की तरह चमकते थे। उसकी कमर भी चमकती थी और हाथ भी चमका करते। जब वह नाचती तो तारे-से नाचने लगते। आवाज़ भी ऊँची और पतली थी, आशा-जैसी मुन्नी-सी, कमज़ोर और शर्मीली नहीं थी कि सुनो तो जी चाहे सो जाओ। उसकी आवाज़ पर तो सोते सपने जाग पड़ते थे। जब बाहर जाती तो दरबान, चपरासी और अर्दली सब गुनगुना उठते और धोबी तक के बाज़ुओं में बल आ जाता और आवाज़ ऊँची हो जाती। पर वह बाहर

निकलती तो चितवनें चढ़ाये, नाक फड़काये और होंठ सिकोड़े। वह पैसे के चार-चार भी नहीं पूछती थी। यहाँ तक कि मुंशी जी, जो एफ़० ए० पास थे, जब घूमी-घूमी आँखों से उसे देखते तो वह एक झटके के साथ मुड़ जाती। हाँ, पूरन के घूँसे खाकर जब उसकी कमर में मीठा-मीठा दर्द उठता तो वह खिल जाती। वह था भी तो कितना बेढंगा! बेयरा तो उसका काम कर ही न सकता। सारे तो कपड़े कीड़े चर जाते और फिर भला चारों कोन उसकी चीज़ें कौन सम्हाल सकता था? एक कपड़ा निकालना होता तो वह सारी अलमारी उलीचकर फेंक देता! एक जूता पहनता और चार उठाकर दूर पटकता। और किताबें तो ताश के पत्तों की तरह फेंटकर रख देता। आईने की मेज़ पर जैसे कोई नहा रहा हो, सब भीगा हुआ और जगह-जगह साबुन। फिर अगर चमकी साफ़ करती तो उलटी चुटकियाँ और घूँसे इनाम में मिलते।

वह सुबह-ही-सुबह एक कार्य-कुशल दरोग़ा की तरह उसके कमरे की व्यवस्था शुरू कर देती। उसे इसकी परवाह नहीं थी कि कोई और काम हो या न हो। आशा कहारी का हाथ बँटाने को बैठी पूड़ियाँ बेला करती, और वह ताज़े-ताज़े फूल गुलदानों में लगाकर पूरन का कमरा गुलज़ार कर देती।

पहले तो ये छोकरियाँ इंजन गाड़ी के आगे आकर लेट जाती हैं और फिर जब कुचल जाती हैं तो हाय-तौबा मचाती हैं। बदनामी, बेइज़्ज़ती और दुनिया लुटने की धमकियाँ ले बैठती हैं और अपना दोष बेचारे समाज के सिर थोपती हैं। भगवान की लीला है, फिर भी दुनिया उन्हीं के साथ रोने में शरीक़ हो जाती है। तो चमकी भी

जान-जानकर इंजन के आगे पसर जाती थी। वह तो इंजन ही कुछ बेआग-पानी का था कि योंही सीटियाँ देता, धुआँ उड़ाता, पटरी बदलकर निकल जाता था। पूरन का लाड घूँसे-चुटकी से आगे नहीं था। ख़ैर, जो गरजते हैं, कभी-न-कभी बरस ही रहते हैं। दूसरी नौकरानियों को उसके ये चोंचले एक आँख न भाते। जले-कटे जुमले चलते रहते।

"चुहिया से बिल्ली भी तो खेलती है। चुहिया ऐंठ जाती है कि वह उससे लाड कर रही है!"

लता का दिमाग़ बड़ा दार्शनिक था और थी भी वह छः बच्चों की माँ।

"अरी, घुस-घुसके जाती है, याद ही करेगी! राजा के बेटे का क्या ठिकाना?" भोला की तायी चमकी की रक़ीब तो नहीं थी!

आशा सुनती तो कुछ न समझती, पर वह पूरन से वैसे ही डरती थी। उसे याद था कि एक दिन जब वह शीला की फ़ाक पर मशीन चला रही थी तो पूरन आ धमका और लगा बातें बनाने।

"हर वक्त काम, काम! मैं कहता हूँ, आशा, ज़रा मेरा भी कोई काम कर दो!"

"क्या काम है आपका?" आशा मशीन पर झुक गयी।

"मेरे काम? हज़ारों! यही कि मेरे सब बटन धोबिन तोड़ लाती है। गिरेबान-चाक फिरता हूँ।"

"कौन-सा बटन टूटा है? सारे तो टाँक दिये!" चमकी बिगड़ी।

"तुमसे कौन कह रहा है?...मैं तो कहता हूँ, आज तक तुमने,

आशा, मेरा भी कोई काम किया! और तुम इतना काम भी क्यों करो, कोई किसी की नौकर हो ?

"सब ही काम करते हैं। मुफ़्त की रोटियाँ कौन तोड़ता है ?" चमकी चाहती थी, कोई उसकी भी सुने। पर पूरन आशा के पास ही खड़ा रहा।

"इतना काम करती है इतनी दुबली-पतली लड़की !...मैं माताजी से कहूँगा, इतना तो काम न लें...और..."

"नहीं...मैं...मुझे काम करना अच्छा लगता है।"

"कुछ नहीं, और कोई क्यों नहीं करता ? चमकी इतनी भैंस-की-भैंस हो रही है, यह क्यों नहीं सीती ?" यद्यपि चमकी बराबर भाभीजी की साड़ी टाँक रही थी। आशा उसकी तनतनायी आँखें देखकर काँप गयी।

"बस, जी, हटाओ सीना !" पूरन ने कपड़ा खींचा।

"जी नहीं," आशा का जी चाहा कि मशीन में घुस जाये !

"मैं कहता हूँ, मत सियो न !"

"शीला कहीं बाहर जा रही है। जल्दी है !"

"कुछ जल्दी नहीं !...अच्छा तो लो सियो।" और पूरन ने मशीन की सुई के आगे उँगली रख दी।

"उँह, यह क़ैंची नासपीटी !" चमकी ने ज़ोर से क़ैंची पटकी।

आशा उछल पड़ी और चमकी दरवाज़ा धड़धड़ाती चल दी।

"यह चुड़ैल क्यों ग़ुस्सा होती है ?...आशा, तुम्हारे क़ैंची लगी तो नहीं...मैं अभी ठीक करता हूँ भुतनी को !"

"छोटे भैया ! अगर आप योंही हमारे सिर पर सवार रहे तो हमसे काम हो चुका !" लता चमकी की पराजय से दिल-ही-दिल में खिली जा रही थी।

"अरी लता, बड़ी बदमिज़ाज है वह। तू क्यों चिढ़ती है ? तुझसे तो मैं बोल भी नहीं रहा।"

"बस, भैया, हमसे यह...वाह, कोई बात है ! जाते हो कि..."

"अगर तुम यहाँ छोकरियों के साथ वक्त गँवाने की जगह बाहर आ बैठते तो क्या अच्छा होता !" बड़े भैया दरवाज़े में खड़े थे। पूरन खिसियाना-सा सिगरेट बुझाने लगा।

"दो घंटे से सेठ टीका राम बैठे दिमाग़ चाटा किये।...काम न करने दिया। तुम होते तो मैं ज़रा दफ़्तर चला जाता।"

"भैया, मेरे सिर में इतनी ताक़त नहीं है कि टीका राम जी की बकवास सुन सकूँ !" पूरन मुँह बनाने लगा।

"कुछ भी हो, तुम बाहर जाकर बैठो।"

"अच्छा हुआ, डाँट पड़ी ! अब ठीक हुए !" लता मुस्करायी।

दरवाज़े पर चमकी से टक्कर हुई। वह भन्नायी हुई निकली। पूरन ने एक चुटकी भरी पसली में। सारा मैल धुल गया। चमकी चमक रही थी—ग़ुस्से से नहीं।

●

फूल

"खाने का कमरा...बरामदा...भाभी जी...बड़े भैया और..."

"और हम ?"

आशा ने फूल गिनते-गिनते चौंककर पीछे देखा। पूरन जी दियासलाई चबा रहे थे।

"मेरे कमरे में तो फूल भी नहीं लगाये जाते।"

"लगाती तो है चमकी।"

"फिर वही चमकी ? चमकी लगाती है तो क्या ?...सारे घर में तो फूल लगाये जायें और हमारे कमरे में नहीं ? आज शिकायत करूँगा !"

"तो लगा दूँगी आपके कमरे में भी," और वह बचे हुए फूलों में से चुनने लगी।

"जी नहीं, ये मरे हुए सफ़ेद फूल नहीं, जैसे किसी के मुर्दे पर डाले जा रहे हों ! यह लगाइए लालवाले !"

और फिर आशा ने वही लाल-लाल फूल पूरन के यहाँ लगा दिये। पर उसका दिल धुकड़-पुकड़ करता रहा, जैसे वह चोरी कर रही हो। उसने कभी बहुत ही आवश्यक काम के बिना पूरन के कमरे में क़दम नहीं रखा था। और जो चमकी आ जाये तो ?

और खाने के समय पूरन ने धीरे से उसे फूल लगाने के लिए धन्यवाद दिया। वह जल्दी से थाली लेकर भाग आयी। जब दोपहर को वह बरामदे के पास से होकर अपने कमरे में जाने लगी तो जैसे किसी ने उसे ठोकर मार दी। लाल-लाल फूल मोरी के पास बिखरे पड़े थे। तेज़-तेज़ क़दम उठाती वह अपनी कोठरी में चली गयी।

"यही सज़ा है तेरी गुस्ताख़ी की!" वह ज़मीन पर लेटी-लेटी अपने जी में कोसती रही। जैसे कोई बड़ी घटना हो गयी। शर्म, अपने से घृणा और न जाने क्या-क्या विचार उसके परेशान दिमाग़ में घूमने लगे। मुरझा भी तो गये, न जाने कबसे पड़े होंगे! बेचारे नुच भी तो गये। वह सोचती रही। एक ख़ास सीटी की आवाज़ पर वह चौंक पड़ी। वैसे तो उसे काम से इतनी फ़ुरसत ही न होती थी कि कुछ देखे, और देखा भी कब जाता था ? पर अकेली कोठरी में जहाँ कोई न जान सके, वह झिरी में से ज़मीन पर लेटकर देखती थी। वह नटखट, मुस्काता चेहरा ग़ौर से देखने में कैसा है ? दिन में हज़ार बार देखकर भी उसकी एक अदा भी याद न कर सकी थी। बात यह थी कि वह देखती ही न थी।

चप्पलों में बड़े-बड़े सफेद पैर और धारीदार पाजामें का कुछ

हिस्सा आकर फूलों के पास ठिठक गया, जैसे ठोकर लगी। आशा ने साँस रोक ली। दो हाथ झुके और बिखरे हुए फूलों को समेट लिया। आशा की आँखें बन्द हो गयीं और वह ज़मीन से चिमट गयी। जी चाहता था, उसी ज़मीन में समा जाये! उसी ने तो ये लाल-लाल फूल जने थे!

"यह किसने ताज़े फूल फेंक दिये? मुफ़्त का बाग़ है न!" आवाज़ आयी और चप्पलें बरामदे में चली गयीं।

आशा देर तक माथा टेके ज़मीन पर लेटी रही। उसी धरती ने तो फूल खिलाये हैं, लाल-लाल!

जब वह शाम को छोटे मुन्ने की गाड़ी पकड़े लौट रही थी तो पूरन ने आकर बच्चे को प्यार करना शुरू कर दिया।

"अरे मुन्ने। तेरे गाल तो, जी चाहता है, खा जाऊँ...और तू कितना नटखट है! मुन्ने, तू बड़ा चुपका बना रहता है!...पर मैं खूब जानता हूँ! है तू बहुत खराब! हर वक्त काम-काम!...तुझे तो हर वक्त काम रहता है! भगवान करे, यह काम तो दुनिया से ही मिट जाये! यह नहीं कि तू कभी किसी से बात भी करे!" आशा चुपकी खड़ी हैंडिल घुमाती रही। "बात यह है कि तू समझता है, हम बुरे हैं, हौवा हैं, तुझे खा जायेंगे!"

पूरन ने सिर ऊपर उठाकर देखा। आशा उसकी आँखें देखकर डर गयी, "तुम समझते हो कि हम शेर हैं...फाड़ खाते हैं!" अब वह सीधे आशा से ही कह रहा था, पर सम्बोधन मुन्ने से ही था, "और क्या ताज्जुब, यदि बोल दो, अभी खा ही लें!"

आशा की परेशानी पर उसे शायद तरस आ गया और वह फिर झुक गया, "और, मुन्ने !...हमने वह फूल उठा लिये।...देखो न, चमकी बड़ी बुरी है ! क्यों, है न ?...हाँ, वह तो बुरी है ही। वह फूल लाल-लाल, मुन्ने के गालों-जैसे ! हमने अपनी दराज़ में डाल दिये हैं। सुना ?...हाँ ! और, भई, तुम्हें ढेर-सा काम होगा...और क्या ?"

"जाइए, तशरीफ़ ले जाइए !...जाइए !" आशा गाड़ी बढ़ाती चली आयी।

जब वह उन लाल फूलों की क्यारी के पास से गुज़री तो सारे फूल धीरे-धीरे मुस्करा रहे थे, आँखें बन्द किये मुस्करा रहे थे।

●

होली

मौसम भी इन्सान से खिलौने की तरह खेलता है। गर्मियों में जी चाहता है, बर्फ़ के समुद्र में कूद पड़ें और कोई बोले तो मुँह पर मारें ! घिस-घिस गर्मी, हल्का-हल्का दर्द। पंखा नहीं, तो लगता है, कोई उबाल रहा है हौले-हौले। पंखा चलाओ तो सिर घूम जाये। तौबा ! और जाड़ा—सुस्ती, नींद...ठण्ड, ठण्ड हर चीज़ ठण्डी ! दिल भी ठण्डा !... बसन्त आयी और कल्ले फूटे। सोयी-सोयी चीज़ें कुलबुलायीं। बे बात रग-रग में शरारत ने चुलबुलापन शुरू किया। बेचैनी ने गुदगुदाना शुरू किया। और होली पर फट पड़ा पहाड़ ! अगर होली न आये तो यह दिल पागल होकर, छाती तोड़कर निकल भागे। थमी नदी कितनी देर थमे ? और फिर जब बाँध में दम भी हो। पर बाँध बाँधे ही क्यों ? होली के दिन तो आशा भी झूम निकली। भाभी की तो सुबह से ही गत बन रही थी। रंग की डली बनी हुई थी। तीन धोतियाँ बदल चुकी थी, फिर भी खाल तक में रंग उतर गया था। यह गुलाल में

क्या तासीर होती है ? क्या कोई रासायनिक तत्व ऐसा भी होता है, जो शराब का गुण रखता है ? जितना मलो, उतना ही आदमी पर भूत सवार हो जाता है ।

आज तो बड़े भैया भी न बचे थे । भाभी के बाद आशा ने उनकी ही गत बनायी । भर-भर बाल्टी वह उन पर ही डालती थी और गुलाल भी थोपा । और स्वयं क्या फुर्ती से साँप की तरह फिसल जाती ! और उधर पूरन ने आफ़त ढा रखी थी । जब भाभी औंधी लेट गयी तो वह भोला की तायी पर फैल पड़ा ।

"अरे मुस्टण्डे ! मेरा-तेरा क्या मेल ?" वह मर्दाने स्वर में ग़ुर्रायी ।

"अरे भोला की तायी ! मेरे सिवा किससे हो सकता है ?...देखो, पिछले जन्म में तुम ज़रूर मेरी थीं ! तभी तो..."

झुलसे हुए बालों में अबरक और गुलाल ने गुलज़ार खिला दिये । और फिर भोला की तायी की अर्थपूर्ण और मोटी-मोटी गालियाँ !

"अरे पूरन ! ज़रा इसे—आशा को तो ले !" बड़े भैया अपना पीछा छुड़ाने को बोले— "अब इसे भिगो तो जानूँ !...डाल !... अरे डाल !"

लोग चारों ओर से आशा को शह देने लगे और वह सिटपिटायी । पूरन पूरी शान से बढ़ता आ रहा था ।

पानी तो उसने गिलास भरकर डाल दिया, पर गुलाल का हाथ रुक गया । उसके मुँह पर रंग न होता तो कोई देखता आकाश-गंगा की बहार !

पूरन क्यों चूकता ? उसने तो आशा को बेदम कर दिया । कीचड़,

फिसलन, नाक, मुँह, आँखों में रंग की बदलियाँ छायी हुई और आशा का घबराया हुआ दिल ! पैर जो फिसला तो बरामदे से नीचे ।

"मार डालेगा, पूरन के बच्चे ?" भाभी चील की तरह झपटी ।

"देखो तो कैसा सूजा है !" भाभी प्यार से आशा का पैर सेंकती जाती थी और पूरन को बुरा-भला कह रही थी—"आपे में थोड़े रहता है !"

"अरे भाभी, अब छोड़ो भी !" पूरन आकर पास ही बैठ गया और रुई सेंक-सेंककर भाभी को देने लगा ।

"शर्म नहीं आती ?...यह नहीं देखते ?...देव-के-देव और यह ज़रा-सी छोकरी !...महेश से खेलता तब बताता वह तुझे !" भाभी अपने भैया महेश को बस जाने क्या समझे थी !

"पर भाभी, कोई लड़कों से भी होली खेलता होगा ? महेश से क्यों खेलता ?"

"तो फिर तुझे इस कमज़ोर नन्ही पर ही हाथ चलाना आता है ?"

"मैं बताऊँ, भाभी ?"

भाभी ध्यान से सुनने लगी ।

"यह करो कि एक छुरी लो और गर्दन पर चला दो !... समझी ?"

"हाय राम !...मगर..."

"में...में...एँ..." कोई रोया और भाभी झपटी ।

पूरन रुई सेंकता रहा—"ख़ूब डाँट पड़वाने की तरकीब निकाली !" वह रुई आशा के पैर पर रखने लगा ।

आशा ने रुई लेनी चाही ।

"मैं सेंक दूँ ।...फिर भाभी से डाँट पड़वाओगी !"

पर आशा ने दोनों हाथों से पैर छिपा लिया—"अब अच्छा हो गया ।"

"वाह, इतनी जल्दी अच्छा भी हो गया ?"

"हाँ !" आशा ने जल्दी से फ़ैसला किया ।

"मैं कहता हूँ...भई...." वह लाचार हो गया—"देखो, फिर मैं कह दूँगा भाभी से !" वह डराने लगा ।

"क्या कह देंगे ?" आशा परेशान हो गयी । कितने बहुत-से चोर थे उसके दिल में !

"यही, मैं कह दूँगा...तुरन्त कह दूँगा..."

आशा डरकर विस्मय से उसका चेहरा देखने लगी ।

"हाँ, अब ठीक है !" वह उसका पैर सेंकने लगा—"देखो...बात यह हुई...यह बात हुई"...वह आशा को बातों में लगा रहा था ।

आशा साँस रोके ऐसे सुन रही थी, जैसे उसने कोई भारी भेद अब खोला और अब खोला ।

"सुनो, मैं यह कह दूँगा...मेरा मतलब है, अगर तुम पैर ठीक से न सेंकवाती तब...कह देता !"

"क्या ?" आशा ने अधीरता से पूछा ।

"यह कह दूँगा कि...आशा मुझसे नफ़रत करती है !"

भाभी आ गयी और आशा घबरा-घबराकर उँगलियों से पैर मसलने लगी। चोट! कैसी दुखती हुई चोट थी! नफ़रत? नफ़रत तो आशा ने किसी से करना सीखा ही न था! और पूरन से नफ़रत?

आँख-मिचौली

पूरन ऐसा बच्चा तो नहीं था जितना भाभी के कथनानुसार बनता था। उसे लाड में सदा बच्चा ही समझा गया और फिर चुलबुला स्वभाव बच्चा बनाये रखता था। जहाँ उसे मौक़ा मिला कि नौकरों और घर के बच्चों के साथ मिलकर उधम मचाना शुरू कर दिया। मैले-सड़े बच्चे नंगे पाँव कुर्सियों-गद्दों पर चढ़ जाते और वह उधम मचता कि भाभी का सिर घूम जाता और वह डण्डा लेकर सारे बच्चों पर पिल पड़ती।

दो दिन बाद कमला जी अपने मायके आ रही थीं। भाभी ननद की ख़ातिर में सारा घर झाड़-पोंछ रही थी। कई दिन से पूरन के लिए तो घर मुसीबत हो गया था। जिधर देखो झाड़-पोंछ! दम उलट गया! उसके अपने कमरे पर भाभी का राज था। ननद के साथ ननदोई भी आ रहे थे और माता जी का घबराहट के मारे बुरा हाल था। बड़े जागीरदार थे, और फिर समधियाना! यह भी विचार था कि

समधियाना और बढ़ जाये। कमला की छोटी ननद शान्ता कुँआरी थी और पूरन भी अब जवान हो गया था।

पूरन बच्चों के साथ न जाने किस समय ड्राइंग-रूम में घुस आया और शुरू हो गयी आँख-मिचौली। जब शामत की मारी आशा कमरा ठीक करने आयी तो एक ग़दर मचा था।

"बाहर जाइए।...कमरा साफ़ होगा।" उसने कारोबारी स्वर में कहा।

"अब यह कमरा भी साफ़ होने लगा?"

"जी हाँ," उसने धीरे से कहा और कुर्सियाँ हटाने लगी।

"जी नहीं...नहीं होगा। सारे कमरे साफ़ ही हुए चले जा रहे हैं! वाह!...हम यहाँ खेल रहे हैं। आओ, तुम भी खेलो, आशा!"

"हाँ...हाँ!" बच्चे चिमट गये।

"हाँ, भई, यह भी खेलेंगी। दायी बनेंगी।"

"नहीं...खेलती मैं।...नहीं, भई, नहीं!"

लेकिन पूरन ने उसे पकड़कर कुर्सी पर बिठा दिया—"हाँ, भई, अब शुरू करो! हम चोर!" और वह ज़मीन पर फसकड़ा मारकर बैठ गया—"लो, भई, ईमानदारी से आँखें मीचो।" उसने आशा के घुटनों पर सिर टेक दिया।

"जी नहीं, भाभी ने कहा है..."

"कुछ नहीं कहा है!...हाँ, मीचो!...जल्दी-जल्दी!" और वह उसकी साड़ी के आँचल से अपनी आँखें बाँधने लगा।

"भई चाचा! बेईमानी की नहीं!" निर्मल व्यापारी का बेटा था न!

"अरे, यह तुम्हारी आशा जीजी बेईमानी कर रही हैं! देखो, ईमानदारी से मीचो!...यों...ऐसे, हाँ!" आशा के दोनों हाथ पूरन ने अपनी आँखों पर रख लिये।

आशा के हवास गुम! उखड़ी-उखड़ी, भागने पर तैयार! पर बच्चे छिप गये और खेल शुरू भी हो गया।

"देखो, भई, यह बेईमानी है!" आशा ने हाथ छुड़ाना चाहा।

"हाँ, खा जाता हूँ मैं! आखिर तुम मुझसे इतना डरती क्यों हो? तुम्हारा डर निकालकर छोड़ूँगा!...समझीं, आशा देवी?...सुनो! मैंने तुम्हें कभी दुख पहुँचाया है, जो तुम मुझे देखते ही घबरा जाती हो? आशा, आखिर क्यों?...भैया से खूब बोलती हो! भाभी से घुल-घुलकर बातें होती हैं!...भोला की तायी तक से हँस-हँसकर दोस्ती की जाती है! एक मैं ही हूँ...बोलो?" वह आँखें खोले आँख मिचौली के क़ानून तोड़ रहा था।

लेकिन आशा का बुरा हाल था, "छोटे भैया!...देखिए... अच्छा, मैं फिर कमरा साफ़ कर लूँगी। आप खेल लीजिए।"

"मैं खेल रहा हूँ?" पूरन की आँखें बड़े भैया से भी अधिक गम्भीर थीं, "तुम्हें मैं हर वक्त खेलता ही दिखता हूँ?...यह-सब खेल है?...जीवन...मेरा जीवन...मेरी...मेरी सारी बातें...ये-सब खेल, तुम इसे खेल समझती हो, आशा?...मैं तुमसे खेल रहा हूँ?... तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ, आशा..."

"छोटे!" कोई बच्चा पुकारा।

"कि यह खेल...मैं खेल नहीं रहा हूँ, आशा! सुनो मैं...मैं..."

वह परेशान होकर अपने होंठ चबाने लगा।

"अरे, भई छोटे!" कुछ बेचैन होकर निर्मल बोला। सोफ़े के नीचे झुके-झुके उसकी गर्दन दुख गयी थी।

"तुम इसे खेल न समझो। परमात्मा के लिए!...कोई मैं बच्चा हूँ? सुनो, आशा, तुम अगर मुझसे नफ़रत करती हो, तो ठीक बात है, बिलकुल ठीक!...अब मैं समझ गया, तुम मुझसे नफ़रत करती हो!"

आशा बेकली से सिर झुकाये बैठी थी। उसने बड़ी मुश्किल से पूरन की ओर देखा। वह कोई बच्चा न थी, बल्कि दुर्भाग्य से बच्चा न थी। वह ख़ूब समझ रही थी...आज से नहीं...न जाने कितने दिन से उसका रोम-रोम समझ रहा था!

"भाभी आती होंगी।" उसने उसका सिर हटाना चाहा।

"चाचा!...भई छोटे!...हम नहीं खेलते!" शीला बड़बड़ायी कहीं कोने में से।

"बस, मेरी बात का जवाब दो!.. तुम्हें मुझसे नफ़रत है?"

आशा को थोड़ी देर तक सिर उठाने की हिम्मत न हुई। और फिर वह अपनी आँखें तो उठाते काँप रही थी। पर उसने हिम्मत की, न जाने कैसे। बस, सिर उठाकर उसने पूरन की आँखों में अपना जवाब डाल दिया।...और फिर उसका चेहरा दोनों हाथों पर झुक गया।

"आशा!" भाभी की आवाज़ आयी।

पूरन जैसे आत्म-विस्मृत-सा बैठा सपने पकड़ने का प्रयास कर रहा

था। वह गम्भीरता, जो कुछ देर पहले उसके चेहरे को निर्जीव-सा बनाये थी, भाग गयी। एक क्षण को वह रुका और फिर, "छोटे !"

प्रसन्नता और भावुकता का स्रोत-सा वह निकला, और वह बच्चों में उलझ गया। आशा मानो कुछ बिखरी हुई चीज़ें समेटने को अँगीठी के पास झुक गयी। वह डर के मारे आँखें मीचे हुए जल्दी-जल्दी क़ालीन पर टटोल रही थी। उसका जी चाहता था, धरती में उतरती चली जाये और ठीक उसके कलेजे में छिप जाये !

"यह क्या हो रहा है ?" भाभी ने बड़ी कठिनाई से चीख़-पुकार में चिल्लाकर पूछा।

"आँख-मिचौली...भाभी !" पूरन ने मस्त शराबी की तरह झूमकर कहा—"आओ, तुम भी खेलो !"

"चूल्हे में जाये आँख मिचौली ! आशा ! यह कमरा साफ़ हो रहा है ?"

"बात यह है, भाभी, कि हम आँख-मिचौली खेल रहे थे, और..."

"आशा जीजी दायी बनी थी।...

"हाँ...और...भाभी दायी बनेगी !" वह भाभी को गोद में उठाकर घूमने लगा।

"हाय पूरन !...अरे पूरन !...छोड़ मुझे !" भाभी को इतनी गुदगुदी हुई कि वह बच्चों को डाँटना भूलकर अपनी जान छुड़ाने लगी।

●

देवरानी

देवर जितना चटपटा शब्द है उतना ही देवरानी सूखा-साखा। जब तक देवरानी नहीं आती, भाभी ही घर की रानी होती है और देवर जी के मन-बहलाव का साधन! इधर देवरानी आयी और उधर देवर चला। अब वह हर बात आकर भाभी के ही कान में नहीं कहता, बल्कि चुपके-चुपके अपनी रानी से भाभी की शिकायतें सुन-सुनकर ज़हरीला काँटा बनता जाता है। वही भाभी, जिसे देखे बिना खाना कड़ुवा लगे, जिसे रुलाने में मज़ा मिले, रूठने पर गले में बाँहें डालने को मिलें, जब रानी आ जाती है तब 'नमस्ते भाभी जी' रह जाती है।

"भाभी, तब तो दो हो जायेंगे। वह गत बनायेंगे तुम्हारी कि याद ही करोगी!" पूरन भाभी से विवाह की चर्चा सुनकर बोला।

"हुँह, दो हो जायें कि चार हो जायें!...तुम भी सदा पिटोगे और वह भी!"

"और भाभी तुम उसे मारोगी?...जी न दुखेगा तुम्हारा?"

"शरारत करेगी तो पिटेगी ही !"

"और जो वह बहुत ही भोली-भाली हुई तब ?" पूरन ने आशा को उचटती हुई निगाह से देखा, जो मुन्ने को लिये घास पर ज़रा दूर बैठी थी।

"भगवान न करे जो तेरी बहू भोली हो !...फिर तो चबा डालेगा तू उसे !"

"अरे भाभी...राम भजो !...कोई मैं कुत्ता हूँ ? वाह, क्या समझ रखा है तुम लोगों ने मुझे ?"

"बस, हम तो कोई सुन्दर-सी ढूँढ़ रहे हैं !"

"ढूँढ़ रही हो ?...वाह, कब तक ढूँढ़ोगी ? जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा तब ढूँढ़ चुकोगी ?"

"है तो, भई, एक नज़र में।...ऐसी सुन्दर है कि क्या बताऊँ !"

"सच, भाभी ? और मेरी नज़र में भी एक बहुत सुन्दर-सी है।"

आशा जल्दी से मुन्ने के सिर की आड़ लेने लगी। बहाना मिलता तो वह कभी की भाग गयी होती।

"भला कहाँ होगी तेरी नज़र में !...चल झूठे !...पूरन ! तूने उसे देखा है...कमला की ननद को ?"

"कमला की ननद को तो नहीं, हाँ...कमल देखा है !"

वह आशा की आँखें ढूँढ़ने लगा, पर वह ऐसे घास को घूर रही थी, जैसे उसमें कहीं घुसने के लिए छेद ढूँढ़ रही हो।

"क्या शान्ता भी आ रही है ?" बड़े भैया जी बोले, जो ज़रा हटकर आराम-कुर्सी में लेटे अखबार पढ़ रहे थे।

"नहीं, आ तो नहीं रही है।...पर तुमने देखा है उसे ?"

"हाँ, छोटी-सी को देखा था।...इन्टर में पढ़ती है शायद।"

"और क्या ?" भाभी मुन्ने को सँभालने लगी, जो आशा के पास से रेंग आया था। और वह कुछ खोयी-सी भागने का बहाना ढूँढ़ रही थी। वह उठने ही वाली थी कि भाभी बोली—"आशा! इसे ले, बला को !"

आशा लेने लगी, पर मुन्ना अकड़ गया और पूरन पर चढ़ आया।

"देखो, भाभी, कितना ही मारता हूँ, पर बड़ा ही ढीठ है, हँसता ही रहता है !"

"तुमने ही ढीठ कर दिया इसे।"

"भई भाभी, अपनी देवरानी तो तुम मुन्ने की शक्ल की ढूँढ़कर लाना !" आज देवरानी की चर्चा में पूरन को चाट का मज़ा आ रहा था।

"ओहो !...क्या मिसाल है !...इस बन्दर की शक्ल की ?"

"अच्छा, तो फिर अपनी शक्ल की लाना !...मुन्नी-सी, दुबली-पतली।...यह क्या बात है, भाभी, कि तुम्हारे चुग़द-जैसे भाई तो हैं और बहन एक भी नहीं।"

भाभी अपनी नन्हीं-सी बहन को याद करने लगी जो चेचक में मर गयी, नहीं तो उससे अच्छी देवरानी कौन हो सकती थी ? और वह उसकी बात करने लगी कि कैसे वह घुटनियों चलती थी और तुतलाती हुई उससे लड़ती थी।

"ऐ है, भाभी ! भला इतनी-सी तुतली पत्नी किस काम की !"

"उई ! तो क्या वह अब भी तुतली ही होती ! निर्मल से चार साल बड़ी थी। खासी बारह-तेरह की होती।"

"उँहुक ! यह बात नहीं पसन्द आयी।...भई, यह आख़िर बड़े भैया में क्या लाल जड़े हैं कि उनकी पत्नी इतनी अच्छी !...भैया हर बात में अव्वल रहते हैं। दुनिया में भी पहले आप आये और पहले ही से इतनी अच्छी पत्नी झपट ली ! आख़िर मैं क्यों पहले पैदा न हुआ !"

"चल, पगले !" भाभी शरमा गयी और बड़े भैया भी पत्नी के सौन्दर्य की प्रशंसा से झेंपकर मुस्कराने लगे। ...यह पूरन हमेशा ऐसे ही बका करता था !

"अरे !" पूरन अपनी क़लम की दर्दभरी दशा देख तड़प गया। बच्चे ने न जाने कब उसकी जेब से निकालकर उससे ज़मीन खोदना शुरू किया और अब जो उसमें से सियाही निकल रही थी तो वह मज़े से मुँह बना-बनाकर पी रहा था।

"ऐं है !...तभी मैं कहूँ, कैसा चुपका पीठ किये बैठा है !"

"पाजी कहीं के !" पूरन ने उसके गाल नोचे और उसकी मोटी-मोटी टाँगें पकड़कर घसीट लिया।

"ऐ वाह ! चल, मेरे बच्चे को छोड़ !"

"आज, भाभी, इसे मार डालूँगा !...इक्कीस रुपये का क़लम था मेरा !"

"चलो, तुम उसके पिता का क़लम ले लेना !...उनके पास दो हैं।"

"हम किसी के पिता-विता का क़लम नहीं लेंगे !...आज इसकी बोटियाँ करूँगा !" पूरन ने उसे घुटनों पर बिठा लिया—"क्यों रे, शैतान ?"

और उस शैतान ने एक तमाचा दिया सियाही-भरे हाथ का !

भाभी हँसी के मारे घास पर औंधी हो गयी।

"हँसती क्या हो ?...अब तुम देखती जाओ, मैं क्या करता हूँ इसके साथ।" उसने बच्चे को उठाकर हवा में उछालना शुरू किया और फिर उलटा लटकाकर, टाँगें पकड़कर झुलाने लगा।

"हाय पूरन !...मेरा बच्चा !...ऊई !...उसकी आँतें लौट जायेंगी !...हाय मेरा बच्चा !" भाभी रोने पर तैयार थी, पर मुन्ना नीली सियाही में लिथड़े हुए मुँह से हँसे जा रहा था। और जब भाभी उसे लेने लगी तो पूरन के कंधे से लिपट गया।

"भई, बड़ा पक्का है !" उसके पिता बोले।

"यों न मानेगा !" पूरन ने उसका कल्ला पकड़कर खींचा। तब ज़रा वह बिसूरा।

भाभी चीखी और आशा मुन्ने को छीन ले गयी।

"ठहर जा, पूरन ! याद रखियो ! तेरे बच्चों की भी यही गत न बनायी तो नाम नहीं !...बल्कि इससे भी ज़्यादा !"

"अजी, होश में ! मेरे बच्चे मुफ़्त के थोड़े ही होंगे !"

"और क्या मेरे मुफ़्त के हैं ?"

"न होंगे, मोल लायी होगी !...पर मेरे बच्चों को तुम नहीं मार सकतीं !"

"क्यों जी, क्यों नहीं ? और तुम मारो..."

"नहीं मार सकतीं ! बचा लेंगे...कोई बचा ही लेगा ! जब तुम्हारे बच्चे बचा लिये जा सकते हैं, तो हमारे क्यों न कोई बचायेगा ?"

"अरे, तेरे बच्चों को मुझसे कोई नहीं बचा सकता ! तूने मेरे बच्चों को ऐसा मारा है कि बस..."

"वाह, भई ! यह ख़ूब रही ! हमारे भैया बचा लेंगे, और कोई बचा लेगा ! आशा बचा लेगी...क्यों, आशा ?"

आशा जल्दी से मुन्ने के जूते की घुण्डी टटोलने लगी।

●

हाट

आशा को राजा साहब के यहाँ आये साल-भर हो रहा था। गाँव क्यों जाती और कौन बुलाता? पर गाँव में हाट लग रही थी और ऐसे समय में रंजी की माँ को आशा भी याद आ गयी। क़र्ज़-उधार करके रंजी ने नया जोड़ा बनाया। माँ-बेटे राजा साहब के यहाँ पहुँचे। आशा अकेली जाने में ज़रा हिचकिचा रही थी कि रंजी की माँ ने चमकी को भी साथ ले लिया और यह छोटा-सा क़ाफ़िला चला। रंजी की माँ ख़ासा चल सकती थी, पर वह रास्ते में ही किसी से ग़प्पें मारती रह गयी और रंजी आशा और चमकी को लेकर चले। हाट की शान रास्ते की धक्का-पेल और भीड़-भाड़ से ही मालूम हो रही थी। रंग-बिरंगी चुँदरियों, पगड़ियों और टोपियों के अतिरिक्त सैकड़ों खिलौने वाले, काग़ज़ के पंखे और चिड़ियाँ लम्बे-से बाँस में लटकाये लपके चले जा रहे थे। गजक और चाट के खोंचे और मक्खियों की भनभनाहट-सहित तेल की मिठाइयाँ, रंगीन चटलों और मोतियों की कंठियों वाले सौदागर

भी हाट की तरफ़ बढ़े चले आ रहे थे। और साथ-साथ सैकड़ों लावारिस गधे, मरखनी गायें, कटखने कुत्ते भी मुस्तैदी से हाट की रौनक़ बढ़ाने को भीड़ में मिले हुए थे, और हाट में तो लगता था, दो दिन के लिए स्वर्ग नीचे उतर आया है। बाँस और काग़ज़ से बनी ताज़ियों की-सी दुकानों के अतिरिक्त ज़मीन पर ही हज़ारों बहुमूल्य चीज़ें फैली थीं। जापानी खिलौने, मिट्टी की मूर्तियाँ, रबड़ के गुब्बारे और सीटियों के बाजे, जिन्हें बजा-बजाकर बेचने वाले और भी होश गुम किये दे रहे थे। इनके अतिरिक्त भालू और बन्दर, पाँच पैर की गाय, दो सिर के बछड़े की लाश, आदमी के मुँह जैसी लोमड़ी, अजीब-ग़रीब करतब दिखाने वाला मदारी और बन्दरों से भी अधिक फुर्ती से बाँसों पर उचकने वाले !

और रंजी बिलकुल अंग्रेज़ी चाल से दोनों लड़कियों को सैर करा रहे थे। आलुओं की चाट, दही-बड़े और तिल-पापड़ी दिला चुके थे। काकरेजी किनारे का साफ़ा उनके काले रंग पर फूटा पड़ रहा था और धारीदार पीली क़मीज़ का दामन हवा की चंचलता से तड़पकर उनकी बारीक धोती में झलकते हुए गुलाबी जाँघिये का हुस्न भड़का रहा था। नये चारख़ाने के मोज़े लाल रबड़ की मदद से बालोंदार ठिगुनी पिंडलियों पर फ़ब रहे थे और फिर गिलट की बड़ी-बड़ी अँगूठियाँ और लाल जापानी रेशम का रूमाल तो मन मोहे लेता था। कई बार कल्लो मेहतरानी ने आँखें भी मटकायीं, रूपा की विधवा बहू शरमायी और दो-चार यार-दोस्तों ने गालियाँ भी गुनगुनायीं, पर रंजी उस समय बहुत ऊँची सोसायटी में थे, वह आँखें घुमाते, नीचे का आगे को निकला

हुआ चौखटा समेटते आगे बढ़ गये।

आशा नानी के जीवन में हाट तो हाट, कभी नुक्कड़ की दुकान से पैसे का तेल लेने भी न गयी। तरह-तरह की चीज़ें, अजीब-अजीब इन्सान, नये-नये खेल-तमाशे देखकर उसे चलना भी याद न रहा। वह हर सामनेवाले से टकरा जाती और हर पीछे आनेवाला उसको मुँह के बल ढकेल देता। और इस धक्कम-पेल में वह लाल घोड़ी पर सवार, हैट लगाये पूरन को देखकर तो सचमुच औंधी हो गयी। न जाने क्यों उसका जी चाहा कि कहीं छिप जाये। पर पूरन ज़मींदारी की शान में अकड़ते आगे निकल गये और उसकी जान-में-जान आयी।

पर थोड़ी ही सी देर के बाद जब वह खरबूज़े के बीजों की पहुँचियों का मोल कर रही थी, तब पूरन बिलकुल ही पास आ जमे। उन्होंने शायद उसे देख लिया। पर देख लेते तो उनके दाँत क्यों छिपे रहते और वह दोनों बहुओं के बीच में बैठती कैसे? पहुँचियाँ छोड़-छाड़ वह जल्दी से आगे बढ़ गयी। पर लाल घोड़ी कहीं भीड़ से रुकती थी। वह कठपुतली का तमाशा देख रही थी तब, रंग-बिरंगे चटले चुन रही थी तब और फिर जब वह सोडा पी रही थी तब... और ग़ज़ब तो तब हुआ जब वह रंजी के हाथ से चाँदी के वरक़ का बीड़ा लेने में हील-हुज्जत कर रही थी, घोड़ी सिर पर सवार हो गयी। और सवार? सवार तो घोड़ी पर सवार ही था। हाँ, उसकी भवें और टेढ़ी हो गयीं और चेहरा भभक उठा। आशा की उँगलियों से बीड़ा छूट पड़ा और ज़मीन पर मुँह खोलकर फैल गया। ख़ैर, दूसरा सही, कोई सचमुच चाँदी का वरक़ थोड़े ही था। गिलट-विलट का होगा! और सोने पर

सोहागा यह कि चमकी न जाने किधर चमक गयी ! अभी तो खड़ी लक्ष्मी को चूड़ियाँ गिना रही थी और एकदम फुर्र से उड़ गयी !

"अब घर चलो। चमकी कहाँ है ?" आशा ने एक अज्ञात भय को छिपाकर कहा।

"अभी से ?...अभी तो दिन पड़ा है !" हालाँकि पूर्व साँवला हो चला था, पर रंजी सूरमा की तरह सीना ताने चल रहे थे।

आज बेतरह उन पर रंग चढ़ा हुआ था। पान-पर-पान पीसे जा रहे थे और बंडलों बीड़ियाँ भस्म कर डाली थीं, पर उनकी चाल मस्तानी और बीड़ियों का धुआँ गहरा होता जा रहा था।

"चमकी कहाँ चली गयी ? मुझसे कहा तक नहीं।"

"लक्ष्मी आदि के संग होगी।...चलो, कुश्ती देखोगी ?"

"नहीं," आशा जल्दी से सिर हिलाकर बोली। भला कुश्ती भी कोई देखने की चीज़ है! नंगे मांस के ढम्मे धूल में लोट रहे हैं। आस-पास खड़े गुंडे गालियों के साथ-साथ नयी-नयी भयानक तरकीबें बता रहे हैं। आशा को सोचने से ही फुरहरी आ गयी। वह दूर से ही काले-भुजंग पहलवानों की नंगी रानें देखकर काँप गयी।

"तो चलो, शर्बत पियें। चमकी मिल जायेगी। तुम डरती क्यों हो ?" रंजी ज़रा और पास चलने लगे।

शर्बत की दुकान पर आशा के हवास और भी जाते रहे। शर्बत पीने वाले डरावने ढंग से कुछ खड़े और कुछ ज़मीन पर लोट रहे थे। एक ग्रामोफ़ोन अपनी पूरी गति से कायँ-कायँ कोई रिकार्ड बजा रहा था। जैसे ही ये दोनों पास पहुँचे, उन्होंने बेतुकी बातें बकनी शुरू कीं।

गदली और बलग़म के रंग की पीली-पीली आँखें अजीब-अजीब इशारे करने लगीं। और फिर शर्बत की मीठी-मीठी सड़ाँद, बीड़ियों का धुआँ और गन्दे जुमले ! आशा का जी मतलाने लगा।

"यहाँ से चलो !" वह रुँआसे स्वर में बोली। उसने लाल घोड़ी और उसके लाल आँखों वाले सवार को भी तो देख लिया था।

"बस, अभी चलो !...चलो !" वह एक ओर चलने लगी।

"उधर कहाँ ?...आओ, मैं चलता तो हूँ !" रंजी आशा से डरता भी था। दूसरे, लोगों के आवाज़े उसे और बौखलाये दे रहे थे। तीसरे, लाल पगड़ीवाले सिपाही की आँखें बड़ी देर से उसे अर्थपूर्ण ढंग से घूर रही थीं।

"तुम ज़रा यहाँ ठहरो। मैं अभी चमकी को लाता हूँ।"

रंजी थोड़ी देर ज़रा हवास ठिकाने करने के लिए अलग चल दिया, नहीं तो वह भली-भाँति जानता था कि चमकी स्वयं ही मिलना चाहेगी। आशा टट्टी का सहारा लेकर दिल को सँभालने लगी।

"हूँ !...तो ये मज़े हैं !"

आशा ने चौंककर उधर देखा। और यदि वह जल्दी से न हट जाती तो लाल घोड़ी ज़रूर उसे दलके रख देती।

"यह तुम्हारे साथ कौन बदमाश है ?" कुलीनता और प्रतिद्वन्द्विता का जोड़ तो नहीं, पर पूरन कभी दो दफ़ा एक बात पर विचार कब करता था ?

"रंजी," आशा ने टट्टी के तिनके कुरेदते हुए कहा।

"रंजी ?...नाम तो बहुत प्यारा है।...मुझे नहीं पता था कि शर्बत

से भी दिलचस्पी है !"

आशा ने शर्बत की तरफ़ आँख भी कब उठायी ? और वह शर्बत था ? कुत्ते की क़ै-जैसी तो बास थी !

"तुम्हें अकेले आने की किसने इजाज़त दी ?"

"चमकी...आयी है ।"

"पर तुम आयी ही क्यों ?...और फिर इस तरह बीड़े चबाते और ताड़ी पीते तुम्हें शर्म नहीं आती ?" पूरन ने अपने को सँभाल कर कहा । नहीं तो लगता तो ऐसा था, मानो बस चले तो उस हण्टर से उसकी खाल उधेड़ दे, जो वह टट्टी के बाँसों पर ताव खा-खाकर मार रहा था । काश, वह आशा की खाल हण्टर से नोच डालता, पर ऐसे तो न बोलता ! उसे जवाब भी देना न आया !

"तुम्हारा जी चाहे जो करो ! पर याद रखो, सब जानते हैं कि तुम हमारे घर की नौकर हो !...बदनामी तो पिता जी की होगी !"

आशा को आश्चर्य हो रहा था कि पूरन इतने गन्दे शब्द भी जानता है ।...हाँ-हाँ, वह उसकी नौकर थी...नौकर ही तो थी ! उसका जी चाहा, टट्टी के खुरदुरे तिनकों से अपने हाथ छीलकर ख़ून बहाले और ख़ूब कलेजा फाड़कर रोये । वैसे ही कलेजे पर इतनी देर से पत्थर रखा हुआ था ।

"और बनती कितनी भोली थीं ! अगर कोई ज़रा-सी बात पूछे तो ऐसे काँप जायें, जैसे हैं बड़ी भोली बच्ची !...मुझे नहीं मालूम था !" पूरन चबा-चबाकर उसके मुँह पर जैसे कड़े-कड़े कंकड़ मार रहा था और वह और भी डर रही थी । घोड़ी बेचैनी से पैर मार रही थी और

इण्टर बाँस पर सड़ाक-सड़ाक चटक रहा था।

घोड़ी एकदम से तड़पी। पूरन ने अपना सारा ज़ोर लगाकर उसकी पसलियों में एड़ियाँ घुसा दीं। वह ज़ोर से छींकी और आशा को पिस जाने से बाल-बाल बचता छोड़कर आगे बढ़ गयी। घोड़ी भी उसके जन्म पर थूक रही थी!

पर उसके लिए अधिक देर खड़े रहना दूभर हो गया। हिर-फिर-कर कुछ गुण्डे उसके पास से खाँसते गुज़र गये। और फिर रसीले गीत झाड़ने लगे। आशा डरकर भागी। दो-एक ज़रा दूर खड़े धीरे-धीरे रानें खुजाकर मीठी-मीठी नज़रों से देख रहे थे और लगभग सभी उस पर मोहित हो चुके थे। उसे बड़ा अचरज था कि इतनी जल्दी से वह किस तरह उस पर ऐसी मुस्तैदी से आशिक़ हो सके होंगे! वह वहाँ से हटकर बीचों-बीच खम्भे के पास खड़ी होकर चारों तरफ़ परेशान आँखों से घूरने लगी।

ज़रा ही दूर पर उसने देखा, चमकी सखियों की भीड़ में शरमा-शरमाकर घोड़ी के बाँके सवार से बोल रही थी, जिसकी आँखें तो हैट के नीचे थीं, पर होंठ शरारत से फड़क रहे थे।

"आतिशबाज़ी नहीं देखोगी?" चमकी ने आशा के 'चलो चलो' पर विस्मय से कहा—"वाह! आतिशबाज़ी का ही तो सारा मज़ा है आज! छोटे भैया भी तो हैं, देखा तूने? ऐसे बुरे हैं!" चमकी ने हँसी रोककर मुँह सिकोड़ा—"लेकर सभों के सामने कहने लगे, चमकी घोड़े पर बैठेगी?...थक गयी होगी? हुँह!"

चमकी को आतिशबाज़ी अच्छी तरह सुझायी भी न पड़ी। उसके

सीने में स्वयं आतिशबाज़ी-सी छूट रही थी। हमारी ज़िन्दगी की घटनाएँ भी आतिशबाज़ी से कितनी मिलती-जुलती होती हैं!

वह अनार-सा छूटा, जगमग करता बवंडर-सा उठा और रोम-रोम चमक उठा, और फिर वही अंधकार!...वह फुलझड़ी छूटी। आत्मा की गहराइयों तक कौंध उठी, और फिर अँधेरा घुप! और फिर ज़िन्दगी कैसी फीकी-फीकी लगती है, जैसे बारूद जल जाने के बाद अनार का खाली मिट्टी का खोल, या फुलझड़ी का तार!

●

नफ़रत

जब हाट से थकी-हारी आशा अपनी कोठरी में पहुँची, तब उसका शरीर पके फोड़े की तरह दुख रहा था। जब उसने पैरों के छालों पर से मिट्टी हटाने के लिए पानी डाला, तो दुख के मारे नसें अकड़ गयीं और पसीना आ गया। पर उनसे अधिक बड़े-बड़े फफोले उसके दिल और दिमाग़ में पड़ गये थे। उसका जी चाहता था कि सब सो जायँ तो वह तकिये में मुँह छिपाकर ख़ूब रोये। दुख की घुटन दबाने के कारण कनपटियाँ फटी जा रही थीं और भवों में पीड़ा थी। शरीर था सो था, आख़िर उसका दिल क्यों इतना कमज़ोर था? नानी उसे सतवाँसी कहा करती थी, पर इसमें उसका क्या दोष था? उसे तो दुनिया में आने की कुछ जल्दी भी नहीं थी। यह तो उसकी कमसिन माँ थी जो कहीं फिसल-फिसला गयी होगी और वह समय के पूर्व दुनिया में आ गयी।

खाने पर उसने देखा कि पूरन ने न तो भाभी को छेड़ा, न बच्चों

के चुटकियाँ लीं और न ही बात-बे-बात ठहाके लगाये।

"ऐ है ! आज तो बड़े चुपके बैठे हैं !" भाभी ने कहा।

लेकिन पूरन न जाने क्या देख रहा था। भाभी ने शरारत से चमचा-भर नमक उसके शोरबे की रकाबी में डाल दिया और उसका कन्धा हिलाया।

"अरे क्या सो रहे हो ? क्या सारी रात तुम्हारे लिए खाना लगा रहेगा ?"

पूरन जल्दी-जल्दी शोरबा पीने लगा।

"अच्छा, भाभी, मेरी भी कभी बारी आयेगी !"

पूरन सब के हँसने से आज खीझ गया। चमकी ने दूसरी प्लेट रख दी और वह जल्दी से शोरबा पीने का बहाना करने लगा। पर आज मामला बेढब था। पूरन ने न तो खाया ही और न ही बोला। आशा जब उसकी मन-पसन्द भुनी हुई दाल लायी तो 'मुझे नहीं चाहिए' कहकर उसने पहले लेना चाहा, फिर आशा का मुँह देखकर जैसे चिढ़ गया और चमकी की थाली में से पापड़ चबाने लगा। आशा सहमकर जल्दी से दूर हट गयी।

"क्यों जी, तुमने मेरी आशा को कैसे डाँटा ? ऐसे बोलते हैं किसी इन्सान से ?" भाभी बोली।

"मैं भला कौन होता हूँ आपकी आशा को डाँटने वाला ? भूख न हो तो क्या करूँ ? माफ़ कीजिएगा।" और वह थोड़ी देर बाद उठ खड़ा हुआ।

"तुमने कुछ भी तो न खाया, पूरन।" भाभी चिन्तित हो उठी।

"कुछ तबीयत ठीक नहीं है।" वह सीधा कमरे में चला गया।

दूसरे दिन संयोग कहिए या कुछ, लू-सी लग गयी। पूरन को ज़ोर का बुख़ार चढ़ा और वह कई दिन लगभग बेहोश-सा रहा। बुख़ार उतरता ही न था। ज़रा भी कम होता तो चिड़चिड़ापन सवार हो जाता। आशा को तो कमरे में जाते डर लगता था, पर न जाने कौन-सी शक्ति उसे पकड़कर खींचती थी, और वह बार-बार काम के बहाने से दरवाज़े ही तक हो आती। रात अच्छी न कटी और भाभी तो थककर चूर हो गयी। आशा दरवाज़े के पास से गुज़री तो उसने उसे बुलाया।

"आशा! मेरी गुड़िया! ज़रा यहाँ बैठ जा, मैं अभी आयी। बैठे-बैठे जी उलट गया!" और वह दबे पाँव चली गयी।

आशा चुपचाप स्टूल पर बैठ गयी। आज कई दिन बाद उसने पूरन को ग़ौर से देखा। वह कितना बड़ा लग रहा था, बिलकुल राजा साहब की शक्ल! दो दिन के बुख़ार ने पीला कर दिया था। और होंठों पर कितनी कटुता थी! बाल भी उलझे पड़े थे। आशा का जी चाहा, कोई उनका छल्ला-छल्ला सुलझा दे और उन थकी हुई कनपटियों पर प्यार से उँगलियाँ फेरे। शायद सोते में भी आत्मा मनुष्य की देख-भाल करती है!

आशा की आँखों ने पूरन को जगा दिया। उसने दो-एक बार आँखें झपकायीं और फिर आशा को देखने लगा, ऐसे कि आशा कुछ परेशान हो गयी। बुख़ार ने उसका दिमाग़ ज़रा परेशान कर दिया था और वह बहक गया था। एकदम से उन आँखों में कई दिन की

लुप्त रोशनी उभर आयी और होंठ चाहत से खुल गये।

"आशा !" वह कोहनी के सहारे से उठा। आशा जल्दी से खड़ी हो गयी। उसकी समझ में न आया कि क्या करे।

पूरन थोड़ी देर तक उसे देखता रहा, तभी एकदम उसकी नज़र उन चूड़ियों पर गयी, जो उसने रंजी को आशा को देते देखी थीं, और वह कण्ठी, सफ़ेद मोतियों की, और चोटी ! एकदम से जैसे किसी ने कोहनी का सहारा खींच लिया और वह तकिये पर गिर पड़ा।

आशा ने जल्दी से उसका सिर ठीक करना चाहा, पर जैसे उस पर भूत सवार था।

"उँह !...रहने दो !...ये-सब कहाँ चले गये ?" वह परेशानी से चारों तरफ़ सिर घुमाने लगा।

"क्या बुला लाऊँ भाभी जी को ?" आशा दरवाज़े की तरफ़ मुड़ने लगी।

"भगवान ! आख़िर ये-सब कहाँ चले गये ?...क्या सब मर गये ?...चमकी कहाँ गयी ?"

"भाभी जी थक गयी थीं। और चमकी...को बुला लाऊँ ?"

"भाभी थक गयी !...पर तुम्हें क्यों कष्ट दिया गया ? क्या कोई और घर में नहीं ?" पूरन व्यंग्य से बोला।

" ओह !...कितनी प्यास है !...ओह, अँधेरा !" पूरन घबरा-घबराकर सिर पटकने लगा और आशा कभी पानी को लपकी और कभी सोचा, भाभी को बुला लाये, इसलिए कुछ भी न कर सकी। कितनी मूरख हो गयी थी ! हो क्या गयी थी, वह थी ही पागल !

"ओह !...मेरा दम घुटा !...अँधेरा !...ये पर्दे हटाओ !"

आशा पर्दा सरकाने लगी। शाम होने में अभी देर थी। पर कमरे में ज़रा अँधेरा हो चला था, ऐसा कि दिखायी न दे। पर वह पर्दे हटाने लगी। उसके हाथ और भी काँपने लगे, जब उसने देखा कि पूरन उसे बराबर घूर रहा है।

जब वह उसके पास का पर्दा हटाने लगी, तब उसे बिलकुल उसके सिरहाने झुकना पड़ा और पूरन की आँखों से बचने के लिए वह झुक गयी। पर्दा हटाकर वह भाभी को बुलाने चली, लेकिन उसने देखा कि पूरन आँखें बन्द किये था, इसलिए वह बैठ गयी। पूरन ने थोड़ी देर बाद आँखें खोलीं तो वह जल्दी से उठ खड़ी हुई।

"भाभी जी को बुला लाऊँ ?" वह ख़ुद ही बोली।

"हूँ !...आपका दिल घबरा रहा है तो जाइए, चली जाइए !... रहने दो मुझे ! पर यह चमकी कहाँ गयी, जो भाभी ने तुम्हें यहाँ फँसा दिया ?...पर तुम चली जाओ !"

"चमकी थक गयी थी। वह भी सो गयी है ज़रा...मैं..."

आशा पूरन की कठोर बातें सुनकर न जाने कैसे आँसू पिये बैठी थी।

"चमकी सो गयी, भाभी थक गयी...तुम थक गयीं ! जाओ यहाँ से ! मुझे किसी की ज़रूरत नहीं !...जाओ !"

अब आशा के आँसू बहने लगे।

"हूँ, अब यह रोया जा रहा है ! मैंने आखिर तुम्हें कहा ही क्या ?...तुम्हें कोई कह क्या सकता है ? जाओ, जहाँ जी चाहे जा

सकती हो।"

"आप...ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं ?...मैंने..."

"मैं...मैं भला क्या कर रहा हूँ ? अब फिर जाकर भैया से शिकायत कर देना कि मैंने तुम्हें रंजी के साथ घूमने पर डाँटा !...हुँह !... जैसे मुझे कुछ...मुझे क्या ?"

"मैंने कब शिकायत की, छोटे भैया ?"

"अब झूठ भी बोलने लगीं ? तुमने भैया से नहीं कहा कि मैं तुमसे नाराज़ हूँ ? मैं क्यों होता नाराज़ ?...मुझे क्या ग़रज़ ?...जी हाँ... जैसे !"

"मैंने शिकायत नहीं की। बड़े भैया पूछने लगे कि पूरन तुझसे नाराज़ है, तो...तो...मैंने कहा, नहीं। तब इस पर वे बोले कि फिर वह क्यों...क्यों...ऐसा..." आशा की समझ में न आया कि क्या कहे।

"ख़ैर, वह तुमने शिकायत नहीं की।...फिर भी तुम्हें बुरा तो लगा कि मैंने तुम से ज़रा सख्ती से कुछ कहा।...मुझे नहीं कहना चाहिए था। उम्मीद है, आप क्षमा करेंगी !" वह पूरे व्यंग्य से बोला, पर अब क्रोध अधिक न था।

"मुझे तो नहीं लगा।" उसने हिम्मत की।

"बेशक न लगा होगा ! . क्यों मेरा बीच में बकवास करना अच्छा लगता ?...मैं कौन ?...तुम रंजी से मिलो !...मैं आखिर दखल दूँ तो यह बेवकूफ़ी है !...तुम्हें हक़ है, तुम चाहे जिसे चाहो !" पूरन मुस्कराया।

"आप...आप बहुत बुरे हैं !" आशा फूट-कर रो पड़ी।

"सुना है, तुम्हारी शादी रंजी से तय हो गयी थी।...मेरी भूल थी, आशा ! मैं बहुत मूरख हूँ !...देखो न, तुम्हें बेबात डाँट दिया !... तुम्हें रंजी पसन्द है .."

आशा ने पूरन को ऐसी नज़रों से देखा कि वह हँस पड़ा।

"और आपको...आपकी चमकी..." वह सिसकियों को दबाकर धीरे से बोली।

"चमकी ?...अरे...मेरी चमकी ?...कौन कहता है ?...हुश्त !" वह उठने लगा—"किसने तुमसे कहा ? बेवकूफ़ हो तुम !"

"जी हाँ !...मैं क्या जानती नहीं हूँ ?" वह बच्चों की तरह बोली।

"पर...यह कहा किसने कि चमकी..."

"और आपसे किसने कहा...रंजी..."

"आशा !" पूरन ग़ौर से उसे देखने लगा, जिसका मुँह रोने से फूला हुआ था, "आशा ! ...मैं बहुत ही बुरा हूँ !...मेरी आशा !" वह खड़ा हो गया।

"लेट जाइए !" वह उसे ढकेलने लगी।

"आशा ! मैं कितना जल्दबाज़ हूँ !...कितना बुरा !" वह उसे दोनों हाथों से पकड़े था। कुछ दुर्बलता और कुछ भावावेश, पूरन लड़खड़ाने लगा।

"अरे !" बड़े भैया ने उसे दोनों हाथों में ले लिया—"यह क्या वाहियात है, आशा ?"

आशा क्या करती ?

"भैया, मैं...आप लोग भी कितने समझदार हैं ! भला मुझ-जैसा शरीर बीमार, और आशा बेचारी को सौंप दिया ! भला वह मुझे रोक सकती है ? मैं..."

"तुमने रोका भी नहीं ? मुझको ही बुला लिया होता !" भाभी भी आ गयी थी, वह बोली ।

"अरे भाभी !...मैं मानता कब हूँ ? वह तो बेचारी लाख रोकती रही...मगर...हाँ, भाभी, पानी !"

वह निढाल हो गया । सारे घर में एक शोर मच गया । लेकिन आशा दोष से मुक्त हो गयी, जब डाक्टर ने कहा—"कुछ नहीं ।... बुख़ार उतर रहा था, इसलिए घबराहट शुरू हो गयी थी । और बस, अगर आराम और शान्ति मिली, तो कुछ दिन में ठीक हो जायेंगे ।"

इसके बाद पूरन वही मसख़रा रोगी बन गया कि उसे दो दिन पलंग पर लेटना मुश्किल हो गया । सब उसके कमरे में हों, यहाँ तक कि भोला की तायी भी, और उन-सब में आशा भी आ जाती, जिससे आँखों-ही आँखों में पूरन हज़ारों बार क्षमा-याचना कर चुका था ।

"भोला की तायी ! तुम अगर मुझसे एक बार ग़ुस्सा हो जाओ तो क्या कभी मनोगी भी नहीं ?"

"चल उधर, पगले !"

"नहीं, सच कहता हूँ !...कभी तुम्हें कुछ कह उठता हूँ तो क्या गाँठ बाँध लेती हो ?"

"क्या ?" भोला की तायी कुछ जो समझे !

"भोला की तायी ! देखो, आदमी भूल करता ही है, क्यों ?"

"कौन भूल करे ?"

"तुम तो बड़ी कूढ़ दिमाग़ हो, जी !...भला कैसे निबाह होगा ?"

"निबाह कर अपनी अम्माँ-बहेनिया के संग !"

"तुम भोला की तायी हुईं तो मैं कौन लगा उसका ?"

भोला की तायी ऐसा भयानक-सा रिश्ता बताती कि पूरन चादर में मुँह छिपा लेता । भला ऐसा रोगी कितने दिन लेट सकता था ?

यह थी वह नफ़रत, जो पूरन के सीधे-सादे दिल में तूफ़ान की तरह फटी और दो झकोले देकर उसको हड्डी-हड्डी हिला गयी।... लेकिन फिर वही । समझ में नहीं आता कि ऐसी सख्त नफ़रत हो कैसे जाती है ?...और फिर भाप की तरह ग़ायब ! मन में ठान लिया कि बस अब क़िस्सा ख़तम, बस हो चुका खेल !...और वह लीजिए, चिकने घड़े की तरह दो मिनट में साफ़ !...भला यह नफ़रत है ? प्रेम की ही एक दुष्ट अंगड़ाई कहो ।

फिर वही शरारतें । वही भाभी की शान !...भोला की तायी की गालियाँ और आशा की आँख-मिचौलियाँ और बच्चों को छेड़ना ! इनसान मुहब्बत में हर समय चुलबुला क्यों रहता है ? मन के साथ-साथ हाथ-पैर और आँखें क्यों मस्त होकर नाचने लगती हैं ? और हर चीज़ हँसने हँसाने के लिए ही नज़र-आती है, और गम्भीरता कहाँ डूब मरती है कि कल का ध्यान नहीं आता । पर औरत ? वह कितनी भिन्न होती है ! उसका मन हर समय सहमा हुआ रहता है । हँसती है तो डर

कर, मुस्कराती है तो झिझक कर। पग-पग पर उसे अपने भेद के खुलने का डर लगा रहता है। क्या होगा ? कैसे होगा ? यह हुआ तो ? वह हुआ तो ?...और फिर बेचारी औरत बेवकूफ़ है !

आशा मुन्ने को नहला कर उसके बालों में ब्रश कर रही थी, पर वह था कि बेचैन फिरकी की तरह नाचे जाता था। यह डिब्बा उल्टा, वह बोतल खोल डाली। ब्रश छोड़ा तो कंघा खाना शुरू कर दिया। सुर्मेदानी खोल कर उलट दी। आशा तंग आ गयी।

" उँह, शरीर !" उसने सलाई छीन कर अलग रख दी।

"कौन ?...मैं ?" पूरन दरवाज़े से डरा हुआ मुँह बनाकर बोला।

"जी नहीं, यह मुन्ना कंघी नहीं करवाता !"

"मुन्ना बहुत शरीर है ! तुमसे क्या डरेगा, डरपोक कहीं की ! ज़रा-सी मेढकी से डर जाओ !"

सुबह पूरन भाभी को मेढकी से डरा रहा था। कोई चने बराबर होगी या ज़रा बड़ी, शायद सेम के बीज-जितनी। पर भाभी सारे घर में चिंघाड़ती हुई दौड़ रही थी।

"यों नहीं ठीक होंगी। पूरन, इसे डोरे में बाँध कर इनके गले में डाल, तब ठीक होगी तबीअत !" पति देव पत्नी-रक्षा के बदले पत्नी को मार डालने की तरकीबें बताने लगे।

"मेरा भैया पूरन ! तुझे मेरी क़सम !" भाभी चिल्ला रही थी। भाभी को छोड़ पूरन ने वह ज़रा-सी मेढकी आशा पर डाल दी, जो बड़ी निश्चिन्त-सी भाभी की दुर्गति देखने में व्यस्त थी। और आशा सीढ़ियों पर से ऐसी लुढ़कती भागी कि बस शेर से भी तो उतना न

डरती ! फिर जब पूरन ने योंही ज़रा-सा काग़ज़ का टुकड़ा डाल दिया तो घबरा-घबरा कर धोती का आँचल खसोटने लगी।

"खा जाती यह ज़रा सी मेढकी तुम्हें ?"

"मुझे घिन आती है उससे !"

"पर यह तो बताओ, तुम बाग़ में से क्यों भागीं ? तुम्हें मुझसे भी तो घिन आती है ?" पूरन ने ब्रश लेकर कहा।

आशा दूसरे ब्रश से मुन्ने के बालों से खेलने लगी।

"यह बताओ कि यह तरीक़ा क्या है, आशा देवी ?" पूरन ने दूसरा ब्रश भी छीन लिया।

"मुझे काम था।"

"हाँ, बस तुमको ही तो काम रह गया है दुनिया भर का !" वह दोनों हाथों से ब्रश करने लगा।

"पिता जी आ गये होंगे। आपको बुलाते होंगे।"

"हूँ ! पिता जी आ गये होंगे ! बुलाते होंगे ! बस करने लगीं उलटे-सीधे बहाने ! तुम चाहती हो मैं चला जाऊँ यहाँ से। लो, नहीं जाते ! करलो हमारा कुछ !"

"भाभी जी कहेंगी, ज़रा-सा काम करने को कहा तो दो घण्टे लगा दिये !"

"हूँ ! बस, सब का खयाल है तुम्हें ! एक मैं ही हूँ, जो कभी बात भी करूँ तो तुम्हें सौ-सौ बहाने सूझने लगते हैं ! ज़रा सोचो, आशा !"

आशा मुन्ने को उठा कर चलने लगी।

"बस भागीं ?" पूरन ने उसे दोनों हाथों से पकड़ लिया।

"छोड़िए !...भैया भूखा है !"

"तुम्हें कौन पकड़ता है ? मैं तो भैया को प्यार कर रहा हूँ ! वाह, कोई भैया को प्यार भी न करे, वाह !" और वह मुन्ने को प्यार करने लगा।

आशा कितना ही मुँह फेरे, पूरन के बाल उसकी आँखों और गालों पर छा गये...और फिर दिल और दिमाग़ पर।

"पूरन !...काश, तुम्हें कभी तो फ़ुरसत होती !" बड़े भैया की आवाज़ आयी, "ज़रा मेरे साथ आओ।"

"मैं ?...आया !" पूरन उनके साथ चल दिया।

आशा ने ठण्डी साँस भरकर मुन्ने के गाल पर मुँह रख दिया।

"मुझे यह बिलकुल पसन्द नहीं...तुम्हारी हरकतें !" भैया गम्भीर थे।

"कौन...? मेरी...क्या...?"

"हाँ, तुम्हारी ! पूरन सिंह, हम अन्धे नहीं हैं ! यह तुम्हारा हर वक्त छोकरियों से मज़ाक़ !"

"कौन मज़ाक़ करता है बड़े भैया ! मैं मज़ाक़ नहीं करता किसी छोकरी से ! आशा !...मुझे उससे हमदर्दी है ! वह हमारी खिलायी की औलाद है, बल्कि हमारे पिता जी, दद्दा की औलाद है।"

"तुम्हें इस तरह उसके साथ मज़ाक़ करना अच्छा लगता है ?"

"भैया, मैं...आपको धोखा हुआ है।...मुझे आशा से आपसे कम हमदर्दी नहीं।...वह...मेरी...मुझे उससे प्रेम है...और..."

"और ? ...और ?...क्या और कुछ भी ? पूरन ! तुम देखते हो, मैंने कभी किसी नौकरानी की तरफ़ आँख उठा कर भी नहीं देखा। हम सचमुच के राजे नहीं और न हमारी शराफ़त इस बात को मानती है।"

"मगर मैं उससे शादी करना चाहता हूँ।"

"तुम ?...हा-हा-हा !" भैया सिर्फ़ ज़रूरत से हँसा करते थे।

"इसमें ऐसी हँसी-ठट्ठे की क्या बात है, बड़े भैया ?"

"यही कि तुम उससे शादी नहीं करोगे !"

"यह आप कैसे कह सकते हैं ?"

"हम ऐसे कह सकते हैं ! पूरन, हम हँसते नहीं ! तुम्हारी तरह हर वक्त हमें ठी-ठी करने की फ़ुरसत नहीं !...और यह शादी का खयाल, यह भी खूब है !"

"लेकिन, आख़िर, मालूम भी तो हो ?" पूरन घबरा-घबरा कर अपने दामन से खेल रहा था।

"मालूम यही हो सकता है कि वह हमारी नौकरानी है ! पूरन ! यह तुम फ़िल्म देख-देख कर शायद इस वाहियात ग़लतफ़हमी में पड़ गये हो। पर तुम्हें मालूम होना चाहिए कि ज़िन्दगी एक फ़िल्म नहीं। यह एक सच्चाई है, समझे ? और बड़ी ठोस सच्चाई ! तुम बच्चे नहीं ! ठहरो, मेरी बात मत काटो !...तुम बच्चे नहीं !"

"मुझे मालूम है कि मैं बच्चा नहीं। तभी तो पूछता हूँ कि आखिर क्या कारण है कि जो मैं चाहूँ वह कर न सकूँ ?"

"ठीक !...लेकिन तुम्हें किसने ऐसे अधिकार दिये, जिनके कारण

तुम्हें समाज और बुज़ुर्गों का दिल तोड़ने का ठीका मिल गया ?"

"समाज ?...वाह-वाह !...वही पुरानी-सड़ी बहस !...पिता जी इतने संकुचित विचारों के नहीं हैं।"

"यही तो तुम्हारी ग़लती है...यानी ग़लत-फ़हमी है। पिता जी कितने ही उदार विचार के हों, वे यह बात कभी पसन्द न करेंगे कि उनके कुल में इस तरह की वाहियात बात हो। और फिर यह सोचो, माता जी...मैं...ये बच्चे, तुम्हारे मासूम भतीजे, आख़िर इन्होंने तुम्हारा क्या क़सूर किया है, जो ये तुम्हारी इच्छाओं पर क़ुरबान हो जायें ?"

"अरे, यानी उनके क़ुरबान होने का सवाल कहाँ से आ कूदा ! वाह !...खूब !"

"क्यों नहीं ? उनकी समाज में क्या हैसियत हो जायेगी कि भई, चाचा ने नौकरानी से विवाह कर लिया ? शीला को कौन शरीफ़ घराना ब्याह लेगा और निर्मल को कौन बेटी देगा, जब वे उनके चाचा के कारनामे सुनेंगे ?"

"फिटकार है ऐसे समाज पर, धिक्कार है ऐसे लोगों पर, जो शीला में ये ऐब निकालें कि इसके चाचा ने ग़रीब लड़की से विवाह कर लिया ! इससे तो अच्छा है कि ऐसे लोगों में जाने के बदले शीला सदा कुँआरी रहे !"

"हाँ, तुम्हारे लिए यह कह देना आसान है। तुम अपनी इच्छा पूरी कर लो, चाहे सारा खानदान मिट जाये !"

"नहीं तो...मेरा मतलब है, हम शीला की शादी ऐसे वाहियात

लोगों में क्यों करें जो इतने संकुचित विचार के हों !"

"तो फिर तुम्हारा विचार है कि शीला के लिए भी कोई आशा का भाई-बन्द, कोई चौकीदार या अर्दली ढूँढ़ूँ !" अरूप सिंह जितने चुप्पे थे, उतने बुद्धू न थे।

पूरन उनके तानों के आगे कसमसा कर रह गया।

"मैं यह कब कहता हूँ ?...भैया, आप मेरी हर बात उल्टी किये देते हैं !" वह हार कर बोला।

"सोच लो तुम ही !...तुम अक़्लमन्द हो, मुझसे ज़्यादा समझदार और बुद्धिमान हो।...ख़ैर, अब इस ज़िक्र को छोड़ो।...तुम्हारी भाभी आ रही है। हम नहीं चाहते इस बात को बेबात फैलायें।"

भाभी अपने बच्चों की फ़ौज को लेकर आ पहुँची।

"देखना !... ज़रा देखना, मुन्ना कैसे मज़े से प्यार करता है !" मुन्ने ने मोटे-मोटे हाथों में माँ का चेहरा भींच कर अपनी चपटी नाक गाल पर रख दी।

"बन्दर !...बड़ी जल्दी नक़ल करने लगता है !" उन्होंने होशियारी से कहा। और पूरन खिसियानापन छिपाने के लिए जल्दी से मुन्ने को सताने लगा।

"भाभी, अब मैं इसे छोड़ता हूँ। इसे चाहिए कि खड़ा होना सीखे।" उसने मुन्ने को पेड़ की शाख़ पर खड़ा करके कहा।

"हे राम !...हाय, पूरन ! नहीं !...अभी वह है कितना जो खड़ा भी होने लगे !"

"कुछ भी हो ! मैं नहीं जानता ! इतना तो फूल रहा है ! बनता

है, खूब खड़ा हो सकता है !"

"लो, भला दस महीने का बच्चा और बनेगा ! इसे आता ही नहीं खड़ा होना !" वह मुन्ने को छीनने लगी।

"मैं नहीं जानता !...छोड़ता हूँ, भाभी !" पूरन ने डराया।

"हाय, मेरा बच्चा !" वह मुन्ने को छीन ले गयी।

"ओहो ! जैसे मैं छोड़ ही तो देता !...मैं इसका दुश्मन हूँ न ?" भैया के शब्द उसे याद आ गये।

●

ठोकर

ज़िन्दगी का एक ही अन्त होता है, यानी मृत्यु ! लेकिन मनुष्य भूलता है कि हर सुबह का अंजाम शाम, हर चैन की नींद का अंजाम जागना और हर ठहाके का अन्त ख़ामोशी होता है। सूर्योदय का क्या आनन्द यदि सूर्यास्त न होता और हर समय सूर्य सिर पर ही डटा खड़ा रहता। और ऐसी नींद भगवान न दे जिससे फिर जाग ही न सकें। पर प्रेम में जितनी ठोकरें विधाता ने अनिवार्य समझी हैं, उतनी तो अच्छी नहीं लगतीं। एक ठोकर वह होती है, जिसमें प्रतिद्वन्द्वी महोदय की झलक से दिमाग़ भन्ना जाता है पर जैसे ही बादल छँटे, फिर चाँदनी है। कभी रंजिश भी हो जाती है, पर यह तो विराम-चिह्न की तरह वाक्य को दिलचस्प बना देती है। एक और ठोकर है, जो यार लोग जान बूझकर लगाते हैं और वह होती है समाज की दोलत्ती। उससे यदि बच निकला जाय तो ख़ैर, नहीं तो खाई तो सामने है ही। सब ठोकरें आदमी सह जाता है, पर समाज की ठोकर से तिलमिला उठता

है। क्या-क्या किताबों में, क़िस्से-कहानियों में, फ़िल्मों में इस समाज की टाँग घसीटी गयी, पर समाज है कि शेर की तरह डटा हुआ है। बात यह है, यहाँ समाज का तो नाम है और टक्कर होती है आदमी से, ख़ुद अपने प्यारे दिल के टुकड़ों से। और पूरन-जैसे मनचले सवार ही ठोकर न खायें तो क्या बड़े भैया जैसे लोट लगाने वाले खायेंगे? पूरन की चाल-ढाल, बोल-बात ने घर-भर को चौकन्ना कर दिया। सबकी नज़रें निशानेबाज़ तोपों की तरह गला फाड़कर दोनों की तरफ़ मुड़ गयीं। आशा के सेवा-कार्यों में आये दिन परिवर्तन होने लगा। अब वह नौकरानियों की जगह माता जी की लाड़ली बन गयी, जो हर समय नागिन की भाँति उसके चारों ओर चक्कर लगाये रहतीं। खाने पर भी वह मुन्ने की कुर्सी पर बाँधकर बिठा दी जाती और पूरन की कुर्सी माता जी और राजा साहब की छाती में घुस गयी। वह ख़ूब इस भोली-भाली चौकीदारी को समझता था, पर न ही इतनी हिम्मत थी और न कोई मौक़ा ही था कि कुछ तेज़ी दिखाये। फिर भी चोर चोरी से गया, हेरा-फेरी से तो नहीं जा सकता। मुन्ने पर लाड जताने के बहाने, माता जी के घुटने पर लेटने के हीले से वह एक नज़र आशा से मिलाने से बाज़ न आ सका। और फिर जब मनुष्य के जीवन का उद्देश्य ही यह हो तो फिर गैलरी में, ड्राइंग-रूम के पर्दों की आड़ में, बाग़ में, कहीं-न-कहीं तो शहद छिपा और मक्खियाँ सोती मिल जाती थीं।

मुन्ने का जन्म-दिन था और घर चमकाया जा रहा था। दीवाली भी आ रही थी। और फिर कहाँ तक मक्खियाँ डंक लिये जान पर

सवार रहतीं। आशा भाभी जी के कमरे में पर्दे लगा रही थी कि पूरन सिंह भी जैसे कुछ ढूँढ़ने जा पहुँचे।

"मेरा कमरा भी कोई ऐसा सजा दे!" वह कुर्सी पर पैर रखकर पास खड़ा हो गया।

"आप के कमरे में इतनी चीज़ें ही कहाँ हैं जो कोई सजाये!" आशा अब बोला करती थी।

"हुँह!...मैं बेचारा ग़रीब आदमी जो ठहरा!" उसने भाभी के चाँदी के सामान पर नज़र डालकर कहा—"भाभी के पिता तो लखपती हैं।"

"आप क्यों निराश होते हैं? आपकी शादी हो जायगी तो क्या पता, इससे भी भारी सामान आये!"

"ऊँ-हूँ।...यह नहीं होने का! मेरी पत्नी ग़रीब हुई तो?"

"भगवान न करे जो आपकी पत्नी ग़रीब हो!"

"क्यों, ग़रीब होना कोई बुराई है?"

"और क्या? बुराई न होती तो बड़े लोग अमीर क्यों बनते।"

"पर मेरी पत्नी तो ग़रीब होगी...नहीं, वैसे तो बेचारी के पास सोना-रुपया तो नहीं, पर रूप तो बहुत ही है।"

"ओहो, छोटे भैया!...तब क्या है?...पर हम तो तब जानें जब रूप जितना रुपया भी लाये!"

"मुझे रुपया नहीं चाहिए और न रूप! मुझे तो...मुझे...मैं..." और वह हकलाने लगा।

आशा पर्दे के छल्ले में डोरे पिरोती रही।

"आशा ! क्या रुपया ही सब-कुछ है ? मान लो मैं कंगाल हो जाऊँ, पिता जी कौड़ी न दें, जैसा कि वे करेंगे ही तो.. तो तुम ..।"

आशा के हाथ काँपकर छल्लों को ज़मीन पर गिराने लगे ।

"बताओ, आशा ?...जो मैं कंगाल हो जाऊँ...और रंजी..."

'भगवान करे यह रंजी तो मर ही जाये !' ...आशा ने सोचा, पर वह बात टालने को छल्ले उठाने लगी ।

"और रंजी के पास रुपया हो जाये, फिर तुम्हें मैं याद भी न रहूँ ।"

"आपकी क्या बात है, आप क्यों कंगाल होने लगे ?"

"ओह ! . बस मान लो !"

"ऐसी बातें न कीजिए !" आशा ने विनम्रता से कहा ।

"तुम ऐसी ही उखड़ी-उखड़ी बातें करती हो ।...आख़िर तुम मेरी बात का जवाब क्यों गोल किये जा रही हो ? बोलो !"

"क्या बोलूँ ?...आप जायेंगे नहीं मैच देखने ? रेल का समय भी चला जायेगा ।"

"सुनो, आशा ! मैं मज़ाक़ नहीं कर रहा हूँ और न यह तुम्हारे बहाने सुनने का वक़्त है । मैंने तुमसे कह दिया और कितनी बार कह दिया और अब मैं पिता जी से भी कह दूँगा !"

"नहीं...परमात्मा के लिए ऐसा न कीजिए !"

"क्यों ? क्यों न कहूँ ?...आखिर कोई कारण ?...वह मेरे ब्याह का कई बार ज़िक्र कर चुके हैं ।"

"तो फिर कर लीजिए न !" आशा समझी, बात टली ।

"यही तो कह रहा हूँ !...कह दूँगा, आशा !..."

"नहीं कुछ न कहिएगा—अगर आप .."

'हाँ, क्या अगर आप? कहो न...सुनो! मैं उनसे कह दूँगा कि शादी कर दें। मुझे रुपया नहीं चाहिए।"

"नहीं, आप ऐसा नहीं कह सकते!"

"क्यों नहीं कह सकता?...कौन रोक सकता है मुझे?"

"मैं रोक सकती हूँ!"

"क्या मतलब?...यानी तुम कह दोगी कि...कि..."

"हाँ!" वह जल्दी से पर्दा लटकाने दूर चली गयी।

"आशा! यह तुम फिर मेरे साथ खेल रही हो?...कारण, आखिर क्या कारण है?" उसने उसकी बाँह सख्ती से पकड़ी।

"मेरी मर्ज़ी—बस!"

"तुम्हारी मर्ज़ी?...तुम्हारी मर्ज़ी?...तो क्या...तो क्या तुम मुझसे ज़रा भी प्रेम नहीं करतीं? और..." उसने उसकी बाँह छोड़ दी।

आशा पर्दा छोड़कर तकियों के ग़िलाफ़ बदलने लगी।

"बोलो। . क्या तुम्हें ज़रा भी ..बता दो, आशा. फिर मैं तुम्हें कुछ न कहूँगा ..!" उसने उसे रोककर पूछा।

आशा ने चाहा, ऊपर न देखे। उसकी आँखें तेज़ी से भीगती जा रही थीं।

"तुम एक बार कह दो।...बोलो! तुम मुझसे ज़रा भी प्रेम नहीं कर सकतीं? उतना भी नहीं, जितना मैं...बोलो।"

"नहीं!" आशा भावावेश में फूट पड़ी।

पूरन ने उसे छोड़ दिया।

"ओह !...हा-हा-हा !" वह ज़ोर से हँसा—"झूठी ! तुम कितनी झूठी हो, आशा !...तुम...सच कहती हो, आशा अगर मैं मर जाऊँ तो...''

"बस-बस !...जाइए यहाँ से !" आशा ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—"क्या मिल जायेगा आपको...एक...एक कंगालिनी की खिल्ली उड़ाकर। आपका मेरा जोड़ नहीं...आपके लिए तो कोई रानी चाहिए !"

"गोली मारो रानी को ! तुम हो मेरी रानी तो...कौन कहता है आशा कि मेरा तुम्हारा जोड़ नहीं ?...वह देखो, वह आईना क्या कह रहा है ?" आशा ने आईने में अपने को पूरन के इतने निकट देखा तो सब-कुछ भूलकर एक बार उसका सिर पूरन की छाती पर झुक गया।

"मैं आज ही पिता जी से कह दूँगा...चाहे वे मुझे मार ही डालें।" वह धीरे-धीरे उसके कान में कहने लगा, "और फिर मेरी आशा......"

आशा की नज़र फिर आईने पर पड़ी और इस बार चमकी का चेहरा उसे पीछे से आग बरसाता दिखायी पड़ा।

"चमकी !" वह तड़पकर हटी।

"चमकी ?... ओह, वह चुड़ैल होती कौन है ? क्या तुम्हें अब भी कुछ ख़याल है ? जलती हो उस बेचारी से !"

"नहीं.. वह अभी यहाँ खड़ी थी !"

"अच्छा, जासूसी ?... ख़ैर, कुछ बात नहीं !... चमकी तो क्या,

कोई भी आ जाये, मुझे किसी की परवाह नहीं !... दुनिया आ जाये और देख ले कि मैं आशा से प्रेम करता हूँ । मुझे किसी का डर नहीं ।"

"अच्छा, यह हिम्मत ! मैं भी तो देखूँ उस सूरमा को जो किसी से नहीं डरता !" और माता जी अपने पूरे प्रताप के साथ तनी हुई दरवाज़े में काली घटा की तरह मँडरा रही थीं । आशा के बस में नहीं था कि वह जादू के ज़ोर से या तो मक्खी बनकर उड़ जाती या पत्थर बन जाती । पत्थर तो वह बन ही गयी !

"माता जी !"

"चुप रहो ?... शर्म नहीं आती... इन्हीं होंठों से मुझे माता कहते, जिससे दो घड़ी हुई मोरी की गन्दगी चाट रहे थे ?"

"मगर, सुनिए तो !"

"मैंने एक बार कह दिया कि चुप रहो ! मैं तुम्हारे मुँह नहीं लग रही ! जिसे कुल की और बाप के ऊँचे नाम की लाज न हो, वह माता का क्या आदर करेगा ? मुझे तो इस चुड़ैल से पूछना है !" वे दो क़दम आगे बढ़ीं ।

"पहले आप मेरी सुनिए...फिर..."

"क्यों, कमीनी ?...यह हमने तेरी सात पीढ़ी को इसी लिए पाला था कि तू मौक़ा पाकर हमें ही डस जाये ?" वे और आगे बढ़ीं, "बोल !...बता !...नमक हराम !"

आशा सिर से पाँव तक काँप गयी । आज तक माता जी ने उसे टेढ़ी आँख से न देखा था । वे किसी से भी टेढ़ी न थीं । उनकी शान और रोब से ही सब काँपते रहते थे और वे प्रायः घर से अलग

पूजा-पाठ, पढ़ने-पढ़ाने में खोयी रहती थीं। यह तो इतना महत्वपूर्ण मामला पेश आ गया था, इसलिए वे आकाश से धरती पर उतर आयी थीं!

"तुम मेरी रक्षा में हो, आशा!" उसने उसके काँपने पर तरस खाकर कहा—"माता जी।"

"ओ-हो!...मैं भी तो देखूँ तुम्हारी रक्षा! पूरन सिंह! तुम भूलते हो! तुम यहाँ से जाओ। मुझे आज इससे इतना पूछ लेने दो कि क्या मेरी मुहब्बत का इसे यही बदला देना चाहिए था?"

"माता जी, क्षमा!" आशा तड़पकर उनके पैरों पर आ गिरी।

"क्षमा?... अब मेरा घर उजाड़कर मुझसे ही क्षमा माँगती है? सच है, नीच जाति का आदमी मुँह लगाये से सिर पर चढ़ने लगता है! ... बोल! तुझे यह हिम्मत कैसे हुई?" माता जी जब क्रोध में आती थीं, तब एकदम चण्डी बन जाती थीं! उन्होंने उसके बाल पकड़कर मुँह उठाया।

"बस, माता जी!... छोड़िए इसे!" पूरन ने उनका हाथ पकड़-कर अलग किया, "आप सुनती तो हैं नहीं।"

"पूरन, तुझे यह हिम्मत?" माता जी का गला भर आया।

"क्या झगड़ा है?" झगड़ा कुछ ऐसा था कि राजा साहब को भी उनके बिल से खींच लाया।

"पिता जी!"

"देख रहे हैं आप अपने सपूत के लच्छन?.. किस सफ़ाई से मेरा हाथ मरोड़ा है!...भगवान!" वे सिर पकड़कर धमकियाँ देने लगीं।

"पूरन ! चलो तुम बाहर !" बड़े भैया माँ के ग़ुस्से से काँप रहे थे।

"पहले माँ से माफ़ी माँगो !"

"मैं ..माता जी, क्षमा ! मगर यह समझ..."

"चुप रहो, पूरन ! बहुत बकवास हो चुकी !" और भैया उसे नन्हें बच्चे की तरह खींचते ले गये।

यह थी वह ठोकर जो सही मानों में पूरन सिंह ने खायी। और इस ठोकर में वही हुआ, जो हथौड़ी के काँच से टकराने से होता है, पर काँच टूटकर अधिक बिखरता है और बिखरकर हर नंगे पैर चलने वाले के तलुओं में घुस जाता है !

●

फ़ैसला

बताने की ज़रूरत तो नहीं, लेकिन फ़ैसला तो फिर भी हुआ। पूरा-का-पूरा इजलास जमा हुआ। माता जी ने जज की कुर्सी सँभाली और काठ के उल्लू, बल्कि गिद्ध की तरह राजा साहब को भी घर लिया। भला ऐसे नीरस क़िस्से में क्या जी लगे, जब नायिका पड़ी कोठरी में सिसक रही हो और नायक कमरे में ज़मीन नाप-नापकर फ़र्श घिस रहा हो? ऐसे नायक-नायिका का इससे अच्छा अन्त भी क्या हो सकता था? ऊपर से कचहरी तैयार! जब पूरन बुलाये गये तो उनका मुँह नीचे को झूल रहा था और बाल अस्त-व्यस्त थे। भाभी पर्दे की आड़ से उनकी यह दशा देखकर ठण्डी साँसें भर रही थी। पर ठण्डी साँसें यदि क्रोध को शान्त कर सकतीं तो एक बात भी थी।

"आओ, पूरन!...यह क्या झगड़ा उठाया है, भैया?"

पिता जी झगड़ा ही न समझ पाते थे!

"लो, वह फिर इन्होंने उसे बिगाड़ने की तरकीबें शुरू कीं! अरे,

अगर तुम्हीं न ऐसे नर्म होते तो ये बच्चे दो कौड़ी के क्यों होते?"
यद्यपि उन्हें विश्वास था कि अरूप सिंह लाख रुपये का आदमी था।

"अरे बाबा! तुम तो...बस...हाँ, बे पूरन! यह क्या बदतमीज़ी है...सीधी तरह...बस, तू कालेज जा!...हो चुकी यह इम्तहान की तैयारी।"

"पिता जी, मैं कोई पाप तो नहीं कर रहा हूँ।"

"पाप नहीं, यह बड़ा पुण्य ही तो है, जो तू हम लोगों के मुँह पर कालिख लगा रहा है!"

"विवाह करने से कालिख लगती है?"

"फिर विवाह का नाम लिया? विवाह तो उस नीच से मेरे जीते जी तू करने की कोशिश भी न करना!"

"क्यों हठ करते हो, पूरन?...दो दिन का जीवन है, उसे क्यों रोग लगाते हो?...मान लो तुमने, जैसा कि कहते हो, कर भी लिया, तो यह तुम्हारी भूल होगी...महा मूर्खता! ...पहले तो तुम्हारी माता जी मुझे, तुम्हें और उस बच्ची को जीने न देंगी। भला इनकी उससे निभेगी?"

"भगवान न करे जो मैं उससे निबाह का रिश्ता जोड़ूँ! देखो जी, तुम इधर-उधर की तो हाँको मत, साफ़ क्यों नहीं कह देते..."

"अरे, बोलने तो तुम देती नहीं हो!...हाँ तो पूरन, तुम आप सोच लो...कैसे वह यहाँ रहेगी?...दूसरे वह...वह..." राजा साहब बड़े प्रगतिशील बनते थे। ज़रा हिचकिचाये।

"लेकिन, पिता जी, आप तो हरिजन प्रेमी हैं।...आप कैसे..."

"हरिजन ?...यह इनके हरिजन-प्रेम ने ही तो लुटिया डुबोयी ! सोचें न समझें और बकवास करने लगें। कितना कहा कि भई, तुम अपने वही दवाओं के झगड़े में रहो, पर..."

बेचारे राजा साहब ने किसी समय सदा जवान रहने की शक्ति-वर्द्धक दवा बनवाने में कुछ गड़बड़ मचायी थी। पर जवान लड़कों के सामने वे उस घटना की चर्चा से ही दुबक जाते थे।

"ग़ुस्सा पूरन पर और बिफर रही हो मुझ बेचारे पर ?...जैसा कहो कहता जाऊँ...पर किसी तरह चैन भी हो तुम्हें !"

"सुनो, पूरन !" अरूप सिंह समझाने लगे... "तुम मामले को समझते हो।...मैंने तुमसे पहले भी कहा था...ज़रा सोचो, तुम्हारी हरकत का हम सब पर कैसा असर पड़ेगा ?...कमला की ससुराल वाले क्या कहेंगे ?...मेरी पत्नी के घर वाले क्या सोचेंगे ?...हम कहाँ मुँह लेकर जायेंगे ?"

"आप बड़े स्वार्थी हैं, भैया !...आपके ससुर कौन से शाह हैं ? सारी उम्र सूद खाते बीती...और अब..."

भाभी बेचारी काँपकर दूर हट गयी।

"कुछ भी हो, तुम्हारा कहना किसी तरह भी नहीं माना जा सकता !"

"नहीं माना जा सकता तो न माना जाये। मनवाता कौन है ? यही न कि पिता जी मुझे कंगाल कर देंगे !...बस, सो इसकी मुझे रत्ती-भर परवाह नहीं।"

"हाँ,...परवाह नहीं। और फिर वह, जिसे तुम बड़ी देवी समझते

हो, ज़रूर तुमसे विवाह करेगी ! अरे वह तुझ पर थूकेगी भी नहीं ! सुना ?" माता जी बोलीं ।

"आप न उसे समझ सकीं और न कोशिश की !"

"अरे, मैं इन नीच औरतों को ख़ूब समझती हूँ !"

"बस, माता जी, रहने दीजिए ! ...पिता जी, भैया, मेरा जवाब सुन लीजिए !...मैं आशा से विवाह करूँगा ! और आप कहते हैं यह नामुमकिन है, तो दिखा दूँगा कि नामुमकिन बातें भी कभी-कभी मुमकिन हो जाती हैं ! मैं आज ही यहाँ से चला जाता हूँ, फिर आप लोगों को कोई दोष न देगा !"

"तुम जहाँ भी जाओगे, हमारे लिए बदनामी और कलंक का टीका लगवाओगे ! और भी चार लोग यही कहेंगे कि बड़ा लालची बुड्ढा है, ग़रीब लड़की थी इसलिए..."

"आजकल के लोगों के दिमाग़ भी तो ख़राब हो गये हैं ।"

"तो फिर...फिर मुझे किसी तरह छुटकारा नहीं ?"

"नहीं...तुम हमारे यहाँ पैदा हुए हो और..."

"काश, मैं किसी कंगाल के घर पैदा होता कि मुझे ताना तो न मिलता ! मगर फिर कहे देता हूँ कि मैं आज ही चला जाऊँगा और मुझे बहुत अफ़सोस है कि फिर भी आपको बदनामी से बचाव नहीं !" पूरन पैर पटकता चल दिया ।

"है कैसे नहीं...पूरन सिंह ? अभी बच्चे हो तुम !" अरूप सिंह ने धीरे से कहा, "पिता जी, बस एक ही तरकीब है । वह यह कि आशा को कहीं भेज दीजिए और पूरन को ख़बर न हो । नहीं तो यों

चले जाने में वह आप जो दुख झेलेगा सो अलग और बदनामी तो रहेगी ही।"

"कहाँ भेज दें?"

"क्यों?...अगर कमला के पास भेज दें और उसे सारा मामला समझा दें तो वह ज़रूर देख-भाल रखेगी।"

"नहीं, जी! मैं अपनी बेटी का घर नहीं जलाना चाहती। उसे तो उसके गाँव ही डलवा दो।" माता जी जानती थीं कि करन सिंह कितने शौक़ीन-मिज़ाज दामाद थे।

"माता जी, गाँव में तो पूरन पहुँच जायेगा।"

"तब फिर उस डायन को ज़हर दे दो!"

"ज़रा गुस्सा धीमा कीजिए!"

"अरूप ठीक कहता है। कमला उसकी देख-भाल अच्छी करेगी और पूरन के पुरखों को भी पता न चलेगा।"

इस लाड-प्यार से लायी हुई आशा समेट-समाटकर कमला के यहाँ कोसों दूर पहुँचा दी गयी। शर्म उसे यों आयी कि कमला क्या सोचती होगी?

पर कमला कुछ अधिक सोच-विचार की आदी नहीं थी।

जब पूरन को नन्हीं शीला ने बताया कि आशा दीदी गयी तो वह साँप की तरह बल खा उठा। पहले तो वह दनदनाता गाँव पहुँचा, पर फिर वह भैया से लड़ने आया।

"मैं ख़ूब समझता हूँ, भैया! मैं पहले ही समझ गया था! आपकी

सुरीली पत्नी तो आपको पसन्द नहीं, और आशा के लिए आप तभी इतने परेशान हैं !" ग़ुस्से में आदमी पागल हो जाता है।

"पूरन ! क्या कह रहा है यह •तू ?" उनके हवास खो गये—"पूरन ! मैं तो तेरे भले के लिए कर रहा हूँ, वरना मेरे भैया ! मेरा बस होता तो मैं..."

"तुम्हारा बस ? भैया, तुम्हारा तो ख़ूब बस था। तभी तो तुमने यों मेरे हाथ-पैर काट दिये। भैया, तुम मेरे हमेशा से दुश्मन हो ! मैं मर जाऊँ तो ख़ुश होना। सारी जायदाद के मालिक तो होगे !"

"पूरन ! बस करो ! ऐसे बोल न निकालो, जिनसे बाद को पछताना पड़े ! तुम मेरे भाई नहीं, बेटे के बराबर हो। अगर ऐसा ही मुझे धन-सम्पत्ति से प्यार होता तो जान-बूझकर तुम्हारा विवाह माता-पिता की इच्छा के बिना करवा देता ताकि वे तुम्हें कौड़ी न दें। पूरन, मुझे ऐसा न समझो !...परमात्मा के लिए यों मेरा दिल न दुखाओ !" अरूप की बड़ी-बड़ी गम्भीर आँखों में आँसू भर आये।

"फिर आपने उसे कहाँ भेज दिया ? आप मुझे उसका पता बता दीजिए।"

"मैंने उसे नहीं भेजा। वह आप ही चली गयी। उसने कहा, वह तुम्हारा जीवन ख़राब नहीं करना चाहती। पूरन, वह देवी थी।... उसने यह भी कहा कि वह मर जायेगी, पर अब तुमसे लाग न रखेगी।"

"भैया !...क्यों कहा उसने ऐसा ?...वह मुझसे प्रेम नहीं करती ?"

"नहीं, पूरन ।...मैंने कहा न, वह देवी है ! वह तुमसे प्रेम करती है । तभी तो वह गयी...तुम मानो तो..."

"पर अब मैं क्या करूँ, भैया ?" पूरन ने खोये हुए बच्चे की तरह बर्राना शुरू किया ।

"तुम मर्द हो !...मर्दों का काम औरतों की याद में रोना नहीं ... वह चली गयी तो तुम्हारी समझ और बुद्धि तो नहीं ले गयी ...गाँव का काम देखो...इम्तहान की तैयारी करो ।"

"पर मैं उसे ढूँढ़ निकालूँगा !"

"तुम उसे दुख दोगे, पूरन !"

"दुख ?...आह !" वह सिसकियाँ भरकर रोने लगा ।

भूल गये

दुनिया ही भूल जाती है। छुरी का घाव भरा और दुख ध्यान से उतरा। माँ बच्चा जनते समय चीखती है, चिल्लाती है, भगवान से प्रार्थना करती है कि वह बाँझ ही भली। पर उधर दुख बीता और वह नये बच्चे पर मरने लगी और दूसरे बच्चे की आस बाँधने लगी। पर पूरन तो ठीक भूला। आशा मर गयी। सुना उसे प्लेग ले गया। सारा गाँव प्लेग में उजड़ गया। रंजी-सा पहलवान लोट गया। उसकी बुढ़िया माँ की कमर टेढ़ी पड़ गयी। आशा मर गयी—पूरन की आशाएँ मर गयीं। वह बहुत-कुछ भूल गया। कितना बहुत-सा हँसना भी भूल गया। मुन्ना कितना बड़ा और नटखट हो गया था और दूसरा मुन्ना भाभी की छाती से आ लगा। पर वह उन्हें प्यार करना और गुदगुदाना भी भूल गया। आशा होती तो उसे सब कुछ याद रहता। वह दिखा देता कि वह कायर नहीं था। वह सिर्फ़ पिता जी के रुपये के आसरे पर पैदा नहीं हुआ था। वह दिखा देता कि दुनिया में जीने के कितने रास्ते हैं।

पर यह आशा क्यों मर गयी ? कैसा भूला पूरन कि भोला की तायी को भी भूल गया ! यहाँ तक कि वह स्वयं छेड़ बैठी, पर वह मुस्कराकर चुप हो रहा और बुढ़िया के दुखी दिल में टीस-सी उठी, और वह कुम्हला गयी।

"पूरन ! शीला का जन्म-दिन है। क्या दोगे तुम ?" भाभी इठलायी।

"क्या दूँ ?" पूरन सिर झुकाकर बोला।

"मैं बताऊँ ?...अरी शीला क्या लेगी ?" और फिर उसने शीला के कान में न जाने क्या सिखा दिया कि वह बोली—

"चाची !...हैं ममी, चाची !"

"हाँ ! तो अपने चाचा से कह !"

पूरन चुपका उठकर चला गया।

"तुम शादी कर लो।...माता जी कितनी दुखी हैं !"

"हाँ भैया, ये सब मेरे ही कारण दुखी हैं।"

"नहीं, पूरन...डाक्टर कहता है कि शादी से तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक हो जायेगा।"

"वाह, भैया ! शादी कोई दवाई है कि बीमार अच्छे हो जायें ? और कौन कहता है कि मैं बीमार हूँ ?"

"पूरन, मेरे लाल !" माता जी ने घुटने पर लिटाकर प्यार से कहा—"क्या यह अरमान चिता में लेकर जाऊँगी ? मेरे दो लाल हैं,

और उनमें से एक का विवाह अपने हाथों से न करूँ ?"

पूरन थोड़ी देर चुप पड़ा रहा। न जाने क्या-क्या बातें दिल में मचलती रहीं! जी चाहा, माँ से लिपटकर रोने लगे। बचपन में जब कोई चीज़ माँ छीन लेती थी तो वह यही करता था और वह उसे तुरन्त दे देती थी।...पर अब आशा को तो मौत ही छीन ले गयी।

"चाँद मेरे! तुम्हारे पिता भी बूढ़े हो रहे हैं। क्या समझते हो, उनके मन में तुम्हारे विवाह का अरमान नहीं ?"

'विवाह' शब्द ने सोयी हुई बातें जगा दीं। न जाने उसे क्या-क्या याद आ गया! पर यह माँ भी कैसी चीज़ है! आपकी बोटियाँ काट डाले, लेकिन फिर भी आप उसके शरीर के ही तो एक टुकड़े हैं! और फिर उन आँखों में कितना प्रेम था!

"माता जी, मेरे विवाह का आपको शौक़ होता तो..."

"पूरन! गयी बातों को जाने दो। माँ की भूल भी ममता का एक फेर है। ममता में ही माँ बच्चे को ख़ून पिलाकर पालती है और ममता में ही मार डालती है। तो क्या वह माँ डायन हो गयी, बेटा ?" और उनकी आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ बह निकलीं—"मैं क्या सुखी हूँ ?"

"अच्छा, माँ, अब..."

"तुम ब्याह कर लो! ...तुम्हें ख़ुश देखकर दो दिन मैं भी जी लूँगी!...नहीं..."

"जो जी में आये कीजिए, माता जी।" वह उठकर कमरे में जा पड़ा। लेटे-लेटे जी घबराया तो दराज़ में से फूल निकालकर देखने लगा।

ये वही फूल थे, लाल-लाल, मुन्ना के गालों-जैसे लाल फूल, जो धरती ने उगले थे और वही धरती आशा की मिट्टी को निगल चुकी थी। अब वे फूल सियाह हो चले थे, जैसे जमा हुआ मुर्दा ख़ून !

जब कमला की ननद के लिए पूरन की माँग गयी तो वहाँ सब की बाछें खिल पड़ीं।

"पूरन अपना ही लड़का तो है !" कमला की सास, जो सारे समधियाने के नाम पर नाक-भौं चढ़ाती थी, प्यार से बोली।

"हाँ, माता जी, पूरन बड़ा हँसमुख है ! बिलकुल अपनी शान्ता-जैसा !"

"तुम जो चाहो सो करो।" बुढ़िया ख़ुशी दबा रही थी।

'भूल गये ! इतनी जल्दी भूल गये पूरन सिंह जी !' आशा ने अपनी कोठरी की ज़मीन पर गिरकर सोचा।

काश, वह अपने गाँव में होतो तो रंजी पहलवान की तरह प्लेग उसे भी डस जाता !

आग

एक तो वह आग होती है, जो चूल्हे में दिन-रात भड़कती रहती है और फिर एक वह होती है जो किसी की नादानी से सूखे छप्पर में लग जाती है और काग़ज़ की तरह वह फुक-से हो जाता है। अब सुनते हैं, वे आगें भी होती हैं जो बम के गोलों से फैल जाती हैं और दम-के-दम में ऊँची-ऊँची कोठियों को भस्म कर देती हैं।

लेकिन वह नन्ही-सी चिनगारी, जो भूभल में पड़ी हौले-हौले सुलगा करती है, वह भी तो आग होती है। न किसी महल-दोमहले को जलाये, न कुछ, पर जहाँ दबी पड़ी रहती है, आस-पास की भूभल हल्की-हल्की आँच से सफ़ेद और बेजान हो जाती है। और ऐसी ही कोई चिनगारी कहीं कलेजे में जा छिपे तो वैसे तो शरीर खाता भी है, पीता भी है और सभी-कुछ करता है, पर वह धीमी-धीमी आँच और वह मीठा-मीठा दर्द, कुछ मन भटका-सा रहता है। आशा भी सी तो रही थी शान्ता बाई का दहेज़, पर हाथों से, और मन बीती हुई बातों के साथ

धूप-छाँव में डूबा हुआ था। भगवान न करे, क्या वह यह चाहती थी कि पूरन पागल हो जाये या उसके दुख में सदा कुँआरा ही बैठा रहे ? उसने जान-बूझकर तो प्रेम किया नहीं, और फिर किया भी तो उस पर शाबाशी और प्रोत्साहन मिलने की आशा ही नहीं थी। लेकिन फिर भी... फिर वह चाहती क्या थी ? यह वह बिलकुल अकेले में अपने मन से भी न कह सकती थी।

कुछ तो करता पूरन ! कुछ तो बोलता !...वह दूर नहीं, उसकी अपनी बहन के यहाँ थी। वह यह न जानती थी कि बहुत बार हमारी पीठ के पीछे रखी हुई चीज़, जिसके लिए हम तड़प रहे हैं, हमें नहीं मिलती।

"आशा ! देखो तो, तुमने सारे फूसड़े निकाल दिये इसमें !" शान्ता ने उसे कोई कपड़ा दिखाकर एक झटके से सपनों की दुनिया से घसीट लिया।

"क्या...हाँ...शान्ता बाई......यह कपड़ा ही ऐसा है। मैंने तो बहुत सँभाला।"

"खाक सँभाला !...अब इसे अलग सीना हाथ से ! तुम्हारा तो मन ही नहीं लगता !" वह कपड़ा आशा पर फेंककर चल दी।

"ओहो ! आशा देवी सिलाई कर रही हैं !" श्यामलाल सदैव इतराकर बात करता था। करन सिंह ने न जाने उसके किन गुणों को देखकर उसे रख छोड़ा था। बस, वह उनसे डरता बहुत था और यही अदा करन सिंह को भा गयी थी उसकी। वह उन्हीं की जात-बिरादरी

का होगा या बनता था, पर घर में एक ग़रीब रिश्तेदार के रूप में रहता था। जब से आशा आयी थी, अपने स्वभाव के अनुसार उसने उससे भी डरना शुरू कर दिया था। परन्तु यह डर भी ख़ूब था! जहाँ वह उसे अकेली देखता, मीठी-मीठी डरी हुई आँखों से देखने और नर्म-नर्म बातें करने लगता। आशा कुछ न बोलती।

"तुम हमसे नाराज़ हो, आशा रानी?"

"मुंशी जी, भला मैं आपसे क्यों नाराज़ होने लगी?" आशा ने ऐसी कटुता से उत्तर दिया, जो नाराज़ी से भी बुरा था।

"तुम से बात करो तो मुँह मोड़ लेती हो। जानती हो, आशा देवी, हमारे मन की क्या दशा हो रही है?...क्यों?"

"मुंशी जी आप जाते हैं कि मैं बहू जी से कहूँ?"

"अरे राम! यह ज़ुल्म? ...पर सुनो तो...बात करना कोई पाप है?"

"आप शान्ता बाई से बात कीजिए न...ऐसा ही शौक़ है तो!..."

"ओहो!...ख़ैर!...पर आशा देवी! हम तो बेचारे ग़रीब आदमी हैं। हमारी आदत नहीं कि अपनी हैसियत से ऊँचा हाथ फैलायें।"

श्याम लाल ने आशा की कहानी सुन रखी थी।

"मुंशी जी, दया कीजिए...या और कुछ आपको कहना है?" आशा उसके व्यंग्य पर रोने पर आ गयी।

"ख़ैर, हम तो कहते हैं, आदमी को अपने रास्ते पर चलना चाहिए, क्यों ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ें जो मुँह के बल गिरें?"

"हाँ, आप ठीक कहते हैं, मुंशी जी।"

"तो फिर...आशा, हम तुम से बात भी कर लेते हैं तो..."

"बात यह है, मुंशी जी, मैं...मैं...आप जाइए यहाँ से !" आशा उसकी नर्म-नर्म आवाज़ से जल गयी।

"हाँ...पर अब शान्ता बाई की शादी हो रही है...सुना...लड़का बहुत सुन्दर है...क्यों, है न ?"

श्याम लाल इतना चालाक था, पर मुद्रा ऐसी मूर्खों की-सी बनाये रखता था कि बस बड़ी-से-बड़ी बात मिस्री की डली की तरह हलक़ से उतार देता और लोग देखते रह जाते।

"और शान्ता बाई के साथ भी तो दो एक आदमी जायेंगे...तुम ही चली जाओ न !"

आशा का बस चलता तो कुत्ते की जीभ में ख़ूब सुइयाँ चुभोती, पर वह सिर झुकाये बैठी रही। और जब वह चला गया तो न जाने क्यों आँसू रोके न रुक सके।

शादी का दिन भी आ पहुँचा। कमला बहू की बेपरवाही कोई नयी बात नहीं थी। न जाने कितनी चीज़ें ऐन वक़्त तक के लिए छोड़ दीं ! न जाने कितने कपड़े बिना टँके अधूरे रह गये और आशा मशीन की तरह उन पर जुटा दी गयी। बरात इतनी धूम से आयी कि राजाओं की भी न आयी होगी। घण्टों तो रिसाला-पल्टन निकलती रही और फिर हाथी-घोड़े। आशा भी दो-तीन छोकरियों के साथ एक खिड़की में फँसी तमाशा देखती रही।

"अरे ज़रा हटो तो, चुड़ैलो !" शान्ता बाई ने दो-एक को अलग

करके खिड़की में अपना सिर अड़ा दिया ।

"हटो जी !...तुम्हें बरात नहीं देखने देंगे !...वाह जी, कहीं दुल्हन भी अपनी बरात देखने बच्चों की तरह दौड़ती होगी !" एक बोली ।

"मगर अपनी बाई है भी तो बच्चा !...मैं तो अपनी बरात देखने के लिए मचल गयी थी तो मेरे ताऊ ने गोद में लेकर स्वयं दिखायी ।" दूसरी बोली ।

फिर हाथी पर दूल्हा गुड्डे की तरह बैठे निकले । फूलों और कपड़ों के बण्डल में से चेहरा भी न दिखायी देता था । शान्ता उत्कण्ठा और जिज्ञासा की मूर्ति बनी उसका चेहरा ढूँढ़ रही थी । और आशा—उसकी दृष्टि से वह चेहरा दूर कब हुआ था ? बरात मुड़ गयी और सब स्त्रियाँ दूसरी तरफ़ भागीं । आशा खोयी हुई वहाँ खड़ी रही । उसे जाना भी कहाँ था ! धीरे-धीरे उसका सिर चौखट पर गिर गया और वह लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगी ।

शादी की धूम-धाम से अलग वह माता जी की उजड़ी हुई हवेली में चुपचाप पलंग पर पड़ी रही । कितनी देर से वह सोने और जागने के बीच की अवस्था में पड़ी थी । मन डूबता था और उसमें एक ठहोका-सा लगता था और वह जाग पड़ती थी । फेरे पड़ चुके थे, गोले और पटाख़े छूट रहे थे । आशा को जैसे सन्तोष हो गया । हो चुका अब सब कुछ ! जब तक शादी न हुई थी, एक अस्पष्ट-सी आस बँधी हुई थी । पर अब वह भी बिखर गयी । उसके पाँव एकदम दरवाज़े की ओर उठने लगे । आख़िर अब क्या हर्ज है ? क्या उसकी आँखों ने भी कोई पाप किया है, जो वे कुछ देख भी न सकें । और फिर वहाँ उसे भीड़-भाड़

में कौन देखेगा, कौन पहचानेगा ? वह जल्दी-जल्दी ख़ेमे की डोरियों से बचती, ठोकरें बचाती हुई चली। हाल कुमकुमों से जगमगा रहा था। दुल्हन और दूल्हा बैठे थे। वह भीड़ को चीरकर ऐसी जगह खड़ी हो गयी, जहाँ से वह कम-से-कम पूरन को देख सकती थी। वह सब-कुछ भूलकर एक बच्ची की तरह दुल्हन-दूल्हे को देखने आयी थी। पर वही मन फिर उभरने-डूबने लगा। पूरन मूर्ति की तरह चुपचाप बैठा था। कितनी बदल गयी थी उसकी शक्ल ! पीली रंगत और उभरी हुई आँखें ! पर सुनहरा मुकुट उसके सफ़ेद रंग पर कितना भला लग रहा था—जैसे परियों का राजकुमार ! आशा ने उसे सिवाय काले-पीले सूट के कभी चमकीले-भड़कीले कपड़ों में नहीं देखा था। आज तो वह निराला ही पूरन था ! कितना बदल गया ! मनुष्य एक जीवन में कितने जन्म लेता है ! भाभी फूल की तरह खिली हुई उसकी बग़ल में बैठी थी और एक थाली में पानी भरकर कुछ विचित्र-सी रस्म पूरी की जा रही थी। दुल्हन और दूल्हे की होशियारी का मुक़ाबिला हो रहा था कि कौन उस पानी में से अँगूठी ले ले। पूरन कई बार जीत चुका था। जीत क्या चुका था, भाभी उसका हाथ बच्चों की तरह पकड़े थी।

दरवाज़े के सामने ही थोड़ी सी जगह साफ़ करके नाच भी हो रहा था। आज चमकी जाने कितने दिनों के बाद नाच रही थी। रस्म की समाप्ति पर सब उसके नाच की ओर आकृष्ट हो गये। और भीड़ अधिक बढ़ गयी।

बाहर अतिशबाज़ी छूट रही थी। एक बान न जाने कब आकर पर्दे के पास गिर गया था और पर्दा साथ के किवाड़ और काग़ज़ की

सजावट सहित हौले-हौले सुलग रहा था। चमकी जैसे शराब पिये थी। उसकी आँखें चढ़ी हुई थीं और तमतमाये हुए गाल बिजली के प्रकाश में शोला लग रहे थे।

आशा नीची होने के कारण एक स्टूल पर खड़ी कन्धों पर से झाँकने का प्रयास कर रही थी। आग छिपी हुई बढ़ रही थी—हौले-हौले, नीची-नीची, और अब क़ालीन भी जल रहा था। नाच मृत्यु की-सी तड़प के साथ तेज़ हो रहा था, जैसे गिरने से पहले कबूतर फड़फड़ाता है।

कोई मनचली आशा के स्टूल पर चढ़ने लगी। सन्तुलन बिगड़ा और आशा के मुँह से एक चीख़ निकली। स्टूल तो सँभल गया, पर खेल बिगड़ गया। पूरन की भरपूर नज़र आशा की आँखों में उतर गयी और वह थोड़ी देर के लिए सुन्न हो गयी।

"आशा!" पूरन ने मूर्खों की तरह साँस खींची, जैसे कोई मृत को मरघट से आता देखकर मूर्च्छित हो जाये। पूरन खड़ा हो गया पर इतने में आशा का स्टूल उलट गया और वह जैसे क़ब्र से निकलकर फिर गड़ाप से उसी में डूब गयी। पूरन के चेहरे पर घबराहट और अचरज से मृत्यु की पीलाहट छा गयी। वह आँखें फाड़े दीवार के उस हिस्से को ताकता रहा जहाँ कुछ देर पहले आशा का दुखी चेहरा उसकी आँखों में कोई सन्देश देकर ग़ायब हो गया था।

"क्या है, पूरन?" भाभी ने उसका हाथ हिलाया।

"आशा!...भाभी...अभी..."

"क्या है,...पूरन, कैसी पागलों की-सी बातें करता है?..."

"भाभी...वह अभी थी ! वह यहाँ थी !"

"पूरन...बच्चा बने जाते हो ?...भला वह यहाँ कहाँ ?"

"पर भाभी, यह सपना भी न था... वह यहाँ थी !" पूरन ने घुटी आवाज़ में कहा—"वह मरी नहीं...भाभी !"

"पूरन ! मेरे बीरन...कैसी भोली बातें करते हो ? ...वह मरी या जीती है...तुम ज़रा देखो...धीरे बोलो !" कमला बोली।

"मगर भाभी..."

"अगर-मगर क्या, पूरन ?... अब तुम्हें क्या ... कि वह मरी या नहीं। तुमने तो शादी भी कर ली... अब कहीं..."

"शादी ...मगर क्या वह ज़िन्दा है ?"

"पूरन, चलो, ज़रा बाहर चलो ! तुम्हारा जी ठिकाने नहीं है !" भाभी बात गोल-मोल करके कहने लगी।

पर आग भड़क चुकी थी। शोले फ़र्श, दरवाज़े और पर्दे में लपक रहे थे... और चमकी—नाच रही थी। आग उसके महीन दुपट्टे में लहरा रही थी, पर वह मस्त थी।

"आग !" मजमा चीखा और एक पटाख़े के साथ चमकी दो-एक बार फड़फड़ायी, जैसे दीपक पर जल मरने से पहले पतंगा लहराता है, और वह औंधे मुँह गिरी।

आग !—सबकी नज़र पड़ी, और ज़रा-सी देर में बिजली का तार जल उठा। एक प्रलय मच गया। शोलों की रोशनी में पूरन ने सहमी हुई शान्ता की ओर एक बार देखा। धुएँ और गर्मी से वह गिर रही थी और किसी का नाम निशान भी नहीं था। ज़रा-सी देर में शोले

आसमान से बातें करने लगे। उसने गिरती हुई शान्ता को सँभाला और पिछले कमरे की तरफ़ बढ़ा। बिजली के तार से ऊपर भी आग लग रही थी। वह बरामदे की तरफ़ मुड़ा। बाहर की धुँधली रोशनी में उसकी आत्मा फिर दुनिया से खिंचकर मरघट में पहुँच गयी।

आशा दुनिया से बेख़बर दीवार से सिर टिकाये खड़ी थी।

"आशा !" पूरन के गले से निकला।

आशा चौंक पड़ी, पर अधिक देर के लिए नहीं। शान्ता को पूरन के बाज़ुओं में देखकर वह फिर उसी तरह बेकसी के दरिया में डूब गयी। उसके शरीर की सारी नसें ढीली हो गयीं और गर्म-गर्म धुएँ ने उसका गला भींच दिया।

पूरन ने शान्ता को छोड़ दिया, जो विस्मित-सी दोनों को देख रही थी। उसने उड़ती-उड़ाती कुछ अफ़वाहें सुनी तो थीं।

पूरन धीरे से बढ़ा। उसे विश्वास था कि यह आशा की आत्मा है, जो मरघट की धूल से उठकर उसके विवाह को चिता बनाने आयी है। वह झिझकता हुआ बढ़ा कि कहीं वह हवा में ग़ायब न हो जाय।

"नहीं !" आशा ने दीवार से चिमटकर कहा और पूरन आत्मा की उस पुकार पर तड़प उठा। उसने धीरे से उसका बाज़ू छुआ। उसे विश्वास था कि वह केवल एक भ्रम है, लेकिन जब ख़ाली हवा की जगह उसका हाथ आशा के ठण्डे शरीर से छुआ तो वह जाग उठा।

"पूरन !" श्याम लाल की आवाज़ ने बताया कि वह जीवित है, लेकिन शायद श्याम लाल ने आशा की आत्मा को नहीं देखा।

एक क्षण में पूरन ने फ़ैसला कर लिया। वह एक झपाके से आशा

को लेकर बरामदे में निकल आया।

"आशा! अब तुम नहीं जा सकतीं मुझे यों छोड़कर!" उसने एक प्यासे की तरह उसे कलेजे से लगाकर कहा—"बोलो, यह क्या चाल थी सारे घर की? मैं समझा!...अब मैं समझा! लेकिन बस, अब हो चुका खेल! चलो, आशा! हम-तुम भाग चलें इस मक्कार दुनिया से!...चलो!" वह जल्दी-जल्दी पेड़ों की आड़ में बढ़ने लगा।

आशा एक काठ की पुतली की तरह चेतनाहीन थी और पूरन उसे नन्हें बच्चे की तरह ऐसे पकड़े हुए था, मानो वह खिलौना थी और बड़ी मुश्किल से खोकर मिली थी। हाथ से छूटी कि फिर खो गयी। वह उसे मरघट से घसीट लाया था।

"पर ठहरो...आशा, ज़रा ठहरो!...मेरी जीजी और उसके बच्चे? न जाने उनका क्या हाल हुआ हो!...तुम यहाँ ठहरो, मैं ज़रा देख आऊँ।" उसे एक पेड़ से गुड़िया की तरह टिकाकर वह चल दिया।

पूरन उधर आग से उलझ रहा था और इधर आशा पानी से... वह पानी, जो आग से अधिक तेज़ होता है और जमी चट्टान उखाड़ फेंकता है!

श्याम लाल पीछे-पीछे आ रहा था। पूरन के हटते ही वह आशा के पास पहुँच गया।

"हूँ...तो यह तरकीब ठीक है।...क्यों, आशा देवी?...कहती तो होगी कि मुँह से कौर खींच लायी!" न जाने श्याम लाल किस मिट्टी से बना था कि चाहे जैसा भी मामला हो, उसके स्वभाव में ज़रा भी बल नहीं पड़ता था।

"रानी साहबा...है तो बात ठीक...पर... यह भेंट अच्छी नहीं।"

भेंट शब्द पर आशा ने सिर उठाया।

"यह पूरन सिंह जी के जीवन की भेंट तो कुछ...ज़रा ऊँची है।"

आशा फिर भी उल्लू बनी बैठी रही।

"तुमने यह भी सोचा, उसका विवाह हो गया है ?"

आशा के जैसे किसी ने कुल्हाड़ी मार दी, पर वह हिली भी नहीं।

"उसका विवाह हो गया है। और अब उसका ही नहीं, शान्ता बाई का जीवन भी उसके साथ है !...शान्ता बाई...उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

आशा चुप रही।

"कैसे मज़े की बात है कि औरत-औरत पर ज़ुल्म करती है और मर्द को दोष देती है ! ज़रा सोचो, आशा देवी, अब क्या होगा ?...तुम पूरन के संग चली जाओगी, कहाँ ? उसके माता-पिता और स्नेहियों से दूर... उसकी मान मर्यादा, धन-सम्पत्ति, सब कुछ छुड़ाकर...और तुम समझती हो कि तुम ऐसी क़ीमती हो कि तुम्हें पाकर वह जग को त्याग देगा ?...वह ख़ैर त्याग भी दे तो भी तुम तो औरत हो।"

आशा के मन में फिर एक तूफ़ान उठ रहा था। वही तूफ़ान, जिसमें बहुत-सी कमज़ोर हस्तियाँ बह जाती हैं।

"और तुम्हें क्या मिलेगा ? तुम तो एक वेश्या ही कहलाओगी।"

आशा ने यह तो सोचा भी न था।

"तुम्हारी हालत एक वेश्या-जैसी ही होगी, जिसने पूरन से सब-कुछ छुड़ा दिया।" श्याम लाल अपनी बात का प्रभाव पड़ते देख और तेज़

हुआ—"आशा देवी !...मैं जानता हूँ, तुम देवी हो ! सुनो !...मैं हूँ तो उल्लू, पर दुनिया की रीत-रस्म को तुम से अधिक जानता हूँ।"

"मैं...मैं क्या करूँ?"

"तुम अभी यहाँ से चल दो।...तुम यहाँ से चली जाओ तब फिर पूरन तुम्हें न खोज सकेगा। उससे कह दिया गया था कि तुम मर गयी हो। पर अब वह ज़रा शोर मचायेगा, लेकिन...अगर तुम उसे न मिलोगी तो वह शान्त हो ही जायेगा। वह सीधा-सादा आदमी है। ऐसा आदमी क्या विश्वास के योग्य हो सकता है? आश्चर्य नहीं जो वह दो दिन में तुम से भी थक जाये। हाँ, और देखो !...तुम चली जाओगी तो वह तुम्हें क्या याद रख सकेगा? वह अब भी तुमको भूल चुका था। वह तो मज़े से शादी भी कर रहा था। और मेरा कहना सुनो ! तुम देख लेना कि चार दिन में वह फिर तुम्हें भूल जायेगा।... ऐसा ही है तो आज़माकर देख लो।"

आशा उठ खड़ी हुई— "मैं चली जाऊँगी।"

"हाँ, देखो, जल्दी करो। यह इधर सड़क है।...पास ही गाँव में पहुँच जाओगी, और गाड़ी करके अपने गाँव पहुँच जाना। तुम्हें रुपया चाहिए?"

श्याम लाल ने उसे बटुए में से कुछ दिया।

"मेरी बात याद रखना। अगर पूरन तुम्हें भूल न जाये तो मेरे मुँह पर सौ जूते लगाना ! समझी?...मैं तो तुम्हारे ही भले को कहता हूँ।...लो, जल्दी जाओ। कोई आ न जाये।"

आशा तेज़ी से झाड़ियों में उलझती, गड्ढों से बचती चली।

दूर उसने पूरन की आवाज़ सुनी—"आशा......आशा !" वह पुकार रहा था, पर उसने अपने कानों में उँगलियाँ ठूँस लीं और दाँत भींच लिये। आग ठण्डी हो चुकी थी, पर चिनगारियाँ दबी सुलग रही थीं।

●

शान्ति

एक चीज़ पीस डालो और उसे मेटकर रख दो तो क्या वह सचमुच मिट जाती है। थोप-थापकर दीवार पर चूना लगा दो, फिर छुट जाता है। पीतल पर चाँदी चढ़ा दो, घिसकर फिर वही पीतल का पीतल! एक घाव हो, उस पर ढेर-सी पट्टियाँ बाँध दो तो क्या वह घाव नहीं रहता? हाँ, घाव तो नहीं रहता, सड़कर नासूर बन जाता है।

पूरन को जब आशा न मिली तो वह ठोकर खाकर गिर गया। ठोकर भी ठीक खायी, नहीं तो वह शायद उस सड़क पर दौड़ जाता, जिस पर आशा घिसटती चली जा रही थी। आग की गड़बड़, भावनाओं की थकावट और उस पर सर्दी में ठण्डी ज़मीन पर गिरना! पूरन कई दिन के लिए बेकार हो गया। वह उसका बुखार—सिर चकराना और घर-भर की परेशानी का बोझ! जैसे किसी ने कोयलों का धुआँ दिमाग़ में भर दिया। छी-छीः, वह कितना मूर्ख था! एक मुसीबत बनकर रह गया था!...उसने एक बार फिर अपने व्यवहार पर नज़र

डाली। उसमें और पागल में फ़र्क़ क्या था। ओह, बस, अब उसने निश्चय कर लिया कि वह दुनिया के इस ज़बरदस्त धारे से खींच-तान करना छोड़कर हाथ-पाँव छोड़ देगा। उसे स्वयं अपने ऊपर भरोसा न रहा था। दिन-रात की लेक्चरबाज़ी से भी वह तंग आ गया था। और इसी तरह हाथ-पैर ढीले छोड़कर उसे ऐसी शान्ति मिली कि वह उसी में खो गया। जितनी दवाएँ कोई खिलाता, वह खा जाता; कोई हँसाता, हँस देता; कोई बिठाता, बैठ जाता। और दूसरों के जिलाने पर वह जीने लगा। उसे लगा मानो शान्त नदी में बहता चला जा रहा है।

"कुछ पढ़ा करो पूरन!" एक दिन भैया ने राय दी और वह आज्ञाकारी बालक की तरह किताब लेकर बैठ गया। न जाने उसने कितनी पढ़ डाली। कितनी मनोरंजक थी वह पुस्तक! कितनी बातें लिखी थीं!

फूल...लाल-लाल फूल...आग...ठण्डी-ठण्डी ज़मीन...और उसमें खोया हुआ-सा वह सफ़ेद चेहरा! वह डूबती हुई आँखें! मरघट...और ठण्डी चिता!

"हैं...? पूरन, यह डिक्शनरी पढ़ रहे हो?" भाभी अचरज से बोली—"भैया, कुछ खेला करो न! आओ कैरम खेलें।"

'यह स्ट्राइकर गोट को किस मज़े से धक्का देता है और वह गड़ाप से गढ़े में जा गिरती है और स्ट्राइकर फिर बोर्ड पर दनदनाने लगता है। वह गिराया...वह मारा...काली-सफ़ेद गोटें नहीं, एक लाल भी तो है। लाल जैसे ख़ून की बूँद। लो, वह भी गयी!' वह सोचता।

"चल, बेढंगे, मेरी गोटें डाल रहा है।" भाभी हँसी, पर वह पूरन की भावहीन मुद्रा देखकर उदास हो गयी।

वह—स्वयं भी तो एक गोट है, जिसे स्ट्राइकर गढ़े में डाल देता है और फिर निकालकर बोर्ड पर जमा देता है। जब आदमी जल जाता है तो क्या मरघट से राख उड़कर फिर आ जाती है ? और वह फिर उसी तरह थकी हुई नज़रों से घूरती है ?

और फिर लोग उसे दवाई पर दवाई क्यों दिये जा रहे थे ? ओहो, वह बीमार था !

ज़रूर होगा, तभी तो...आखिर लोग उसके शुभचिन्तक ही तो हैं। तभी तो उसे भर-भर डिब्बा दवाइयाँ खिलायी जाती हैं। लोग उसे कितना चाहते हैं !

और उसकी पत्नी—ओहो ! बिलकुल भूल ही गया था ! उसके साथ उसने पवित्र अग्नि के चारों ओर भाँवरें डाली थीं। बिलकुल ठीक ! लेकिन अब उसकी समझ में नहीं आता था कि उसका क्या करे।

वह पत्नी तो थी ही उसकी। अब क्या इन्तज़ाम होना चाहिए ? ठीक, वह कल उसके पास जायेगा... ज़रूर ! और फिर...फिर वह वहाँ जायेगा। फेरे हुए थे न !

पर उन फेरों के ख़याल से उसे चक्कर आने लगा। आखिर ये फेरे होते क्यों हैं ? एक दिन वह भी था कि उसे फेरों का कितना चाव था ! वह भोला की तायी से फेरे कराने को कहता था। भोला की तायी ! काली-सफ़ेद गोटों की तरह कभी की गड्ढे में जा पड़ी थी और उसकी गुदड़ी के साथ उसे भी फूँक दिया गया था। लेकिन ये आत्माएँ फिर मरघट से आ जाती हैं और वही प्यार-भरी आँखें अपने

से कितने निकट हवा में टंग जाती हैं ! वही मौन, शर्मीली आँखें जो अपनी भाषा में चटपट बोला करती थीं।

यह रात को वह कैरम के बोर्ड के पास क्यों जा बैठता और उसे घूरा करता था। दैवी हाथ स्ट्राइकर घुमाकर गोटों को थैलियों में डालते और वह सिमटा हुआ देखा करता। और गोटों के कैसे भोले-भोले मुख थे—भोला की तायी, चमकी... और... आशा जैसे। आशा थी न, वही जो मेढकी से डरती थी...रोनी-सी, ज़रा-सी, डरपोक छोकरी !

और वह अपनी दराज़ खोलता, जिसमें अभी तक वह लाल-लाल फूल पड़े थे। नीले जमे हुए ख़ून के रंग के, लेकिन देखते-ही-देखते वे शोलों की तरह भड़क उठते, और चमकी का चेहरा—वह जो पूरन ने अन्तिम बार देखा था—अंगारे के रंग का, उनमें डूबने-उतरने लगता। वह कुर्सी पर गिर जाता और कुर्सी ज़मीन पर।...फिर शान्ता न जाने क्यों सिसकियाँ भर-भरकर रोती ! और उसे फिर दवाइयाँ खिलायी जातीं। लेकिन शान्ति थी—पूर्ण शान्ति ! जैसे सड़ते हुए तालाब के पानी में शान्ति होती है। मृत्यु की-सी ठण्डी, यख़, शान्ति !

●

६०

कुछ दिन तो शान्ता शरमायी रही। लेकिन फिर धीरे-धीरे वह उसे दवाएँ देने लगी। कभी दो-एक बातें भी कर लेती—"लेट जाओ... उठो...चलो...खाओ-पियो"...बस, इससे अधिक न वह बोलती थी और न पूरन समझ सकता था। वह पागल तो नहीं था। खाता था, पीता था और कपड़े पहनता था। हाँ, दूसरे-तीसरे बुख़ार, कभी खाँसी, कभी सिर-दर्द और कभी परेशानी—यह था उसका रोग। वह सिड़ी होता तो काट न खाता किसी को ? वही पूरन, जो ज़रा-सी बात पर बादल की तरह गरजकर तूफ़ान बन जाता था, अब बड़ा ही नेक हो गया था। फिर लोगों को उससे शिकायत क्यों थी ? वह किसी का क्या बिगाड़ता था ! अहिंसा में किस का ज़ोर चलता है ?

"पूरन !...बहू से कभी बात भी नहीं करते !" भाभी ने उसे एक दिन ज़रा तन्दुरुस्त देखकर पूछा। यह वही पूरन था और वही भाभी !

"मैं ?...ओह...करता तो हूँ, भाभी।"

"झूठे !...आख़िर ऐसा शोक भी कोई मर्द मनाता होगा ?"

स्त्रियाँ चिता में जल जाती हैं, पर पुरुषों के लिए यदि वे चारों तरफ़ से कुचले जायें तब भी निर्लज्ज खिलौने की तरह डटे रहना अनिवार्य है। अपने-अपने क़ानून हैं।

"भाभी, मैं किस बात का शोक मनाऊँगा ?...मैंने ब्याह रचा लिया। सभी-कुछ तो हो गया। बात यह है, ज़रा मेरी तबीयत अच्छी नहीं रहती।"

"कुछ नहीं। इससे ज़्यादा तुम बीमार पड़े, और अब क्या तुम बीमार हो ? योंही वहम-सा हो गया तुम्हें तो ! पूरन, देखो शान्ता कैसी उदास रहती है ! उसका भी दिल है ! तुम कभी भूलकर भी उससे बात नहीं करते।"

"कौन ? मैं ? भाभी करता तो हूँ !"

पूरन बहू से बात तो करता था, पर जिस 'बात' की चर्चा भाभी कर रही थी, वह और ही थी। आख़िर बहू को दुख क्या था ? हिन्दू नारी को तो केवल पति चाहिए, और पति मौजूद था। फिर अब वह और क्या लड्डू चाहती थी ? बदमाश वह नहीं था, रातों को ग़ायब वह नहीं रहता, मारता वह नहीं, गहने बेचकर शराब वह नहीं पीता। दूसरी औरतों से ताक-झाँक नहीं करता, फिर आख़िर वह क्या मानसिक दुख देता था कि शान्ता पीड़ा की मूर्ति बनी रहती थी। यह नारी-जाति भी कितनी ढकोसलेबाज़ है और विशेषकर वे स्त्रियाँ, जो स्वयं को पवित्र और सच्चरित्र कहे जाने का पैतृक अधिकार रखती हैं। परन्तु पति ज़रा बूढ़ा हुआ और उसके साथ वही व्यवहार शुरू हो जाता है,

जो दूध सूख जाने के बाद क़साई गाय के साथ करता है। और फिर ज़रा-से बहाने पर रण्डी का पेशा ग्रहण कर दुनिया से सहानुभूति प्राप्त करने लगती हैं। अच्छा रिवाज था कि अभागिनें खटमलों की भाँति चिता में फूँक दी जाती थीं, नहीं तो आज दुनिया में जाने कितनी वेश्याएँ होतीं !

पूरन दण्ड दे रहा था, और यह ऐसा गान्धीवादी दण्ड था कि किसी का बस ही न चलता था। विवाह तो करवा दिया था। पर अब हँसाना-रुलाना किसी के बस की बात तो न थी। और वास्तव में वह बीमार भी था। शादी की रात को उसे ठण्डी ज़मीन पर पड़े-पड़े ठण्ड ने जकड़ लिया था, जो उसके कलेजे में बैठ गयी थी।

"जब किसी की तबीयत ही ठीक न हो तो बात-बे-बात क्या हँसे ?" और वह बात न सुनने के अन्दाज़ में चादर में मुँह ढाँककर लेट गया।

"तुम जानो...लेकिन ज़रा उसे देखो...तीन महीने मायके रह आयी...तुम फिर..."भाभी जानती थी, पूरन कुछ नहीं सुन रहा है।

"बहू, तुम ज़रा पूरन का ध्यान रखा करो।...देखती हो वह कैसा खोया-खोया-सा रहता है।" भाभी ने दूसरा पत्ता चला।

शान्ता सिर झुकाकर चुप हो गयी। वाह ! तिलों में तेल होता तो भले दिन ही न होते ?

"डाक्टर कहते हैं घबराने की कोई बात नहीं, ज़रा ज़िद्दी आदमी है...सदा ही अपनी बात मनवायी। कुछ दिन की बात है। तुम उससे बात-चीत तो किया करो।"

"भाभी जी, वे जवाब ही कब देते हैं ? जैसे सुनते ही नहीं और जो ज़्यादा बोलती हूँ तो मुँह ढाँककर लेट रहते हैं। आप नहीं जानतीं..."

शान्ता स्त्री थी और जो हथियार उसके पास थे, वे सभी इस्तेमाल कर चुकी थी। मर्द तो थी नहीं कि चढ़ बैठती उस पर !

"माता जी का पत्र आया है।" पूरन ख़ामोश बैठा एक अख़बार की तस्वीरें देख रहा था। शान्ता ने उसे जगाना चाहा।

"लिखा है, होली पर आ जाओ।"

पूरन एक बकरे के चित्र को ध्यान से देख रहा था, जो चारों पैरों से एक ज़रा-से खूँटे पर खड़ा था। आदमी से अधिक तो ये जानवर दमदार होते हैं। "हूँ !" वह बोला। न जाने शान्ता से या चित्र से।

"आपको भी बुलाया है। लिखा है दोनों आ जाओ।" शान्ता का जी चिल्ला-चिल्लाकर रोने को चाहता था !

"क्या मैं अकेली ही चली जाऊँ ?" वह धैर्य से बोली।

"हूँ...हूँ !" पूरन ने सिर हिलाया।

"आप...मुझे हमेशा ऐसे ही...आख़िर मैंने आपका क्या बिगाड़ा है कि आप मेरी सूरत से नफ़रत करते हैं ?" उसके आँसू बह निकले।

"मैं...शान्ता...मैं..." वह उसके आँसुओं से डर गया और घबराकर उसने अख़बार छोड़ दिया।

"इसमें मेरा क्या दोष है कि माता-पिता ने आपके पल्ले बाँध दिया ? पर..." उसकी आवाज़ घुटने लगी।

"तो...तुम क्या कहती हो ?...शान्ता, मेरा जी अच्छा नहीं।"

पूरन ने लज्जित होकर कहा।

शान्ता ऐसे निर्दयी के आगे क्या आँसू बहाती? उसके जाने के बाद पूरन ने सिर झुका लिया और फिर वही बकरे की तस्वीर देखने लगा। उसका जी बुरी तरह घबराने लगा और वह सिर कुर्सी के हत्थे पर टेके न जाने कब तक बैठा रहा। शाम को उसे छींकें आयीं और ज़ुकाम हो गया।

आख़िर बात क्या थी, वह बहुत ग़ौर करने के बावजूद न समझ सका। उसने सोचना भी छोड़ दिया था। वह ज़रा भी कोई बात सोचता और उसका दिमाग़ घूम जाता। उसने आख़िर में शान्ति को ही अपनाया था। कितना मज़ा था इस शान्ति में! हम चुपके पड़े हुए हैं और लोग हैं कि कोयलों पर लोटें लगा रहे हैं।

"ओ-हो!...शान्ता बहू तो कमरे ही में घुसी रहती हैं! जब देखो कमरा, जब देखो कमरा!" महेश ने आकर शान्ता को चौंका दिया और वह जल्दी से आँसू छिपाने लगी।

"अरे राम-राम! आँसू?...शान्ता, रो रही हो? भई हम नहीं बोलते!" महेश ने अपना लम्बा-चौड़ा शरीर कुर्सी में अड़ाते हुए मुँह बनाया।

"हुँह!...जब देखो टुसुर-टुसुर रोया जा रहा है। माना कि भई... मगर..."वह आप-ही-आप बड़बड़ाया—"जी में आता है इसे, पूरन को तो बस झिँझोड़कर फेंक दूँ!... तुम्हें... शान्ता, जब तुम्हें रोते देखता हूँ तो जानती हो क्या हाल होता है? ख़ून खौल जाता है,

ख़ून !" महेश के शरीर में था भी घड़ों ख़ून ।

"मेरे भाग्य में ही रोना लिखा है ।" वह निढाल होकर झुक गयी ।

"ख़ूब ! अच्छे भाग्य हुए जिन में रोना लिखा हो !...ऐसे भाग्य उठाकर भाड़ में झोंको और... मनुष्य अपने भाग्य आप बनाता है । सुना ?"

"कोई अपने भाग्य भी बनाया करता होगा ? ख़ूब महेश भैया आप भी..."

"आप ही बनाता है और आप ही बिगाड़ता है । पर शान्ता, हम से तो तुम्हारा हर समय बिसूरता चेहरा नहीं देखा जाता ।" महेश ने अपनी मीठी-मीठी आँखों को आधा बन्द कर लिया ।

"तो न देखिए !" शान्ता ने ज़रा बनकर कहा ।

"न देखूँ ? वाह भई, वाह ! ख़ूब कही !... जैसे देखना-न-देखना अपने बस की बात है !"

"हाँ, जब एक चीज़ बुरी लगे तब फिर..." शान्ता मुड़ गयी ।

"शान्ता !...तुम बनती हो या...या सच में तुमने मुझे नहीं समझा ?" महेश का चेहरा रंग बदलने लगा—"शान्ता, तुमसे कैसे कहूँ...ओह...तुम...शान्ता !"

शान्ता सिर झुकाये कुशन पर फूल गिनती रही ।

जब ऐसे अवसरों पर स्त्रियाँ फुलझड़ी की तरह नाच उठें तब जानो फेर उलटा पड़ा । और अगर...ख़ामोशी—तो यह ख़ामोशी—ख़ामोशी ही है । शान्ता में न इतना बल कि वह फुलझड़ी की तरह चमके और न महेश इतना कमज़ोर कि बंजर भूमि में दाना बोने लगता ।

तो शान्ता भटक रही थी ? न जाने भटकने के क्या अर्थ हैं । कभी-कभी तो हम भटककर टेढ़े रास्ते से सीधे रास्ते पर आ जाते हैं, लेकिन हमें ज्ञान नहीं होता । दुनिया में सीधे और टेढ़े रास्ते में कुछ यों ही-सा फ़र्क़ है । कभी-कभी क्या, आम तौर पर टेढ़े-मेढ़े काँटोंदार रास्ते स्वर्ग में ले जाते हैं और सीधी सड़क पर आदमी बेलाठी के अन्धे की तरह बहकता फिरता है । और मज़ा यह कि उसे पता भी नहीं होता । न जाने लोग सीधे रास्ते की खोज क्यों करते हैं ? सीधे रास्ते प्रायः भोले-भाले, प्रकाशमान और सपाट होते हैं कि गधा भी बिना छेड़े चल पड़े तो पहुँच जाये । पर ये टेढ़े रास्ते, इनकी गहराइयाँ, छिपे-छिपे काँटे, ऊँचे-नीचे पत्थर, एक दुख, एक टीस—यह कहाँ मिल सकता है ?

शान्ता के सामने भी दो रास्ते थे । एक तो वही रास्ता था, जिस पर वह चल रही थी—पतिव्रता भारतीय पत्नी बनकर, जग की लाडली, सती-साध्वी, जहाँ वह मिट्टी के ढेले की तरह लुढ़क रही थी, बल्कि उससे भी गयी-बीती । मिट्टी के ढेले में कभी कोई घास-फूस का तिनका तो उग आता है । वह भी कभी किसी काम में आ जाता है । पर वह तो और ही कुछ थी । उस ठण्डी चिता में उसे साल से ऊपर झुलसते हो गया । काश, पूरन की तरह उसे भी कोई रोग लग जाता ! पर रोग तो उसे लगा हुआ था । लेकिन यह कैसा रोग था जो उसके मन को हर समय गुदगुदाता रहता और दिन-पर-दिन उसका शरीर अधिक लचकीला और आँखें अधिक मुखर होती जा रही थीं । क्यों महेश के मज़बूत शरीर को देखकर उसे हल्के-हल्के भूकम्प-जैसे झटके महसूस होने लगते थे ? क्यों जी कहता था कि वह हाड़-मांस का भारी-भरकम

इंजन उसकी हस्ती को पीस रहा है, लेकिन ऐसे नहीं पीस रहा है कि आत्मा पिस जाये, बल्कि जैसे चन्दन को कठोर पत्थर से घिस दो तो वह महक उठता है। इसी तरह उसकी आत्मा, मन और मस्तिष्क पिस-पिसकर नये साँचों में ढल रहे थे। महेश कोई लफ़ंगा, बदमाश और आवारा न था। उसने कभी किसी नीच नौकरानी से प्रेम का नाता नहीं जोड़ा। उसकी पत्नी मौजूद थी और दो बच्चे भी। वह गृहस्थ था। फिर यह कौन-सी ताक़त शान्ता को पुकारकर उसकी ओर खींचे लिये जाती थी, जैसे खाने की ख़ुशबू सूँघकर आपके नथुने चौड़े हो जाते हैं और आप लम्बी-लम्बी साँसों के द्वारा भोजन की सुगन्ध मेंदे में खींच ले जाते हैं, उसी तरह महेश की चाप सुनकर शान्ता की आत्मा के दरवाज़े चौपट खुल जाते और वह उसकी एक-एक बात, एक-एक आवाज़ दिल की गहराइयों में बन्द कर लेती।

जिस तरह राधा जी गिरधारी की बाँसुरी सुनकर सब-कुछ छोड़-छाड़ मक्खन की मटकी लेकर निकल पड़ती थीं, बिलकुल उसी तरह, वह पाक और पवित्र भाव शान्ता को खींच लाता और पूरन की हस्ती एक बोझिल शव की भाँति विस्मृति में डूब जाती।

एक बात कितने हौले-हौले होती है। चाँद कितनी ख़ामोशी से दबे पाँव नन्हें-से तुच्छ काँटे के रूप में उदय होता है और ज़रा-ज़रा करके कितनी जल्दी पूर्ण चन्द्र बन जाता है। कोई उसे बढ़ते नहीं देखता। पर पूरन की आँखें चाँद तो चाँद, दामन में लगे हुए शोलों तक को न देख सकती थीं। जो देख भी लेती थीं तो समझती न थीं और शायद समझती भी हों, पर बनती थीं। न जाने कितने पागल

हमें उल्लू बनाने के लिए पागल बने हमारी नादानी पर हँसते होंगे।

महेश कोई गुण्डा तो न था जो उसे कुछ डर होता। वह पूरन के सामने ही घण्टों शान्ता से बातें किया करता, पर ऐसी भाषा में जिसे समझने वाले ही समझ सकते हैं। पूरन ने कभी ख़याल न किया। और वह करता भी क्यों? सिर्फ़ एक बार जब महेश शान्ता की चूड़ियाँ, जो बहुत तंग थीं, उतार रहा था, तब चूड़ी के टूटने से ख़ून निकल आया। कोई जान-बूझकर तो निकाला नहीं। जब महेश ने ख़ून चूस-कर साफ़ कर दिया तब पूरन को आश्चर्य हुआ। जब वह उसके हाथ पर झुका हुआ था तो उसकी शक्ल बिलकुल भूखे कुत्ते-जैसी थी और पूरन को विश्वास था कि वह सब ख़ून चूस जायेगा। पर शान्ता पीली पड़ने और कमज़ोर होने के बदले दुगनी सुर्ख़ पड़ गयी, तब जाकर पूरन को सन्तोष हुआ। एक दिन और उसे बड़ा आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि ड्राइंग-रूम में शान्ता सोफ़े पर औंधी लेटी थी तो महेश ने पहले उसे चित किया, फिर फूल की तरह दोनों हाथों में उठा लिया। माना कि महेश के हाथ बहुत चौड़े और लम्बे थे, पर...पूरन अपने हाथ देखने लगा। वे कितने धब्बेदार और टेढ़े थे! वह योंही आज़माने के लिए सोफ़े के पास गया। पहले तो उसने तकिये को धीरे से चित किया और फिर जल्दी से उसे फूल की तरह उठा लिया। उसका चेहरा चमक उठा। उसने धीरे-से तकिये को फिर वैसे ही लिटा दिया और प्यार की नज़रों से उसे देखने लगा। उसे बहुत बुरा लगा जब उसने अपने बूढ़े नौकर लछमन को भयभीत दृष्टि से अपनी ओर देखते पाया। वह जल्दी से अपने कमरे में चला गया।

पूरन की आँखें तो ख़ैर पट हो चुकी थीं, पर औरों के तो आँखें थीं। और लछमन की तो गुद्दी में भी आँखें थीं जो चारों तरफ़ नाचा करती थीं !

"छोटे भैया ! कितने दिनों से आपसे एक बात कहने को थी। कोई मौक़ा न मिला...पर आज हमने कहा, चलो कह ही दें।" वह एक दिन दरवाज़े की चौखट पर आ बैठा।

"हूँ...कहो।" पूरन किताब में लाइनें गिनते हुए बोला।

"क्या कहैं, सरकार...आप खुद नहीं देखत हैं। कितने कमजोर होय गये हैं।"

"हाँ, लछमन, दवाई तो पीता हूँ।"

"दवाई पियत हौ...का दवाई...हम कहत हई छोटे भैया...अभी ठीक ना हैं।"

"क्या ?" पूरन फिर लाइनें गिनने लगा, "क्या दवाई ठीक नहीं ? तो तुम ही बताओ कुछ ?"

"अब हमसे पूछत हौ कि, का ?...कुछ घर-बार की भी खबर है ?" लछमन ने ज़रा ज़ोर से कहा।

"घर-बार की ? हाँ लछमन...है तो।...क्यों ?"

"खाक !...तुमका खाक खबर न है !"

"नहीं होगी...मगर क्या ज़रूरी है कि मुझे खबर हो ही ?... चलो, तुम्हें है। जाओ, चाय लाओ मेरे लिए। देखो..."

"काहे नहीं। तुमहीं का खबर न होये तौ फिर का ?...कोई और तुम्हरे..."

"लछमन...चाय लाओ !...देखो, पत्तियाँ कम डालकर। उस दिन की तरह काली सियाह न हो।"

"छोटे भैया !" लछमन ने संयत होकर कहा—"आपका मालूम है कि...।"

"लछमन ! चाय लाओ !" पूरन ने ज़िद्दी बच्चे की तरह किताब मेज़ पर पटक दी। उसका जी चाहता था, ज़ोर-ज़ोर से चीख़े !... लछमन को उसके दिल की ख़बर न थी !

"अच्छा, सरकार...ठीक...पर..." लछमन पत्थर में जोंक न लगती देखकर चल दिया। पर एक हो, दो हो तो कोई भुगते।...एक दिन—

"पूरन, क्या कर रहे हो ?" अरूप सिंह देर तक बैठने आये थे। उन्होंने अपना कोट उतार दिया।

"मैं...कुछ नहीं भैया !" वह ज़रा हँसमुख बनकर बोला।

"पूरन सिंह !...तुम्हारी शादी को दो साल होने को आये, लेकिन तुम्हारी हालत में कोई फ़र्क़ नहीं। डाक्टर कहता है तुम बीमार नहीं हो।"

"डाक्टर तो गधा है, भैया !" पूरन ज़रा मुस्कराया।

"वह कहता है, तुम जान-बूझकर...मेरा मतलब है, योंही वहम करते हो।.. पूरन, ज़रा होश में आओ। लछमन कहता था...तुम ख़ुद समझदार हो...।" वे एक दम रुक गये।

"क्या कहता था लछमन ?" पूरन की हालत कुछ अच्छी थी।

"कि...कि...शर्म करो, पूरन !...तुम मर्द हो आख़िर को !...

तुम कैसे बरदाश्त करते हो ?"

"हाँ, भैया, मैं मर्द हूँ !...कौन कहता है, मैं मर्द नहीं ? ये हाथ, ये पाँव !" उसने ज़रा मज़ाक में हाथ अकड़ाये, "देखिए, खाता हूँ, पीता हूँ। देखिए कितना बड़ा मर्द हूँ ! शादी करके घर बसा लिया है !...अब भगवान ने चाहा...तो..."

"ओह पूरन !...शर्म नहीं आती तुम्हें ?"

"मुझे ?...ही ही !...ओह !... मुझे ?...वह क्यों आये भला ? शर्म की क्या बात है ?"

"सुनो !...अब यह बात हद से ज़्यादा बढ़ गयी है ! मैं महेश का आना-जाना और शान्ता से मिलना पसन्द नहीं करता।"

"वह क्यों भैया ?"

"वह इसलिए कि शान्ता पाप की तरफ़ जा रही है।"

"पाप की तरफ़ ?...आपका मतलब है, वह महेश से प्रेम करती है इसलिए ?"

"किस मज़े से कह रहे हो, जैसे कोई बात ही नहीं ?" अरूप आश्चर्य से बोले।

"अगर वह महेश से प्रेम करती है तो...भैया...उसे कर लेने दो। सुना, भैया, उसे करने दो !" वह बेचैन होकर दोनों हाथ मलने लगा।

"पूरन !"

"सुनो भैया ! वह प्रेम करती है...यही न ?...करने दो...उसे !" वह आवेश में खड़ा हो गया—"तुमने कभी प्रेम नहीं किया...तुमने कभी ऐसा प्रेम नहीं किया कि...कि...तुम उसमें भस्म हो गये हो।...

तुमने प्रेम किया...कैसे ?...भाभी-से ! तुम्हारी प्रयतिमा तुम्हारी गोद में लाकर डाल दी गयी तब तुमने प्रेम करना सीखा...और..."

"वह तुम्हारी स्त्री नहीं ? बोलो, शान्ता तुम्हारी स्त्री नहीं ?" वे कुछ हार चले।

"पण्डितों की अटरम-सटरम से तो वह मेरी स्त्री है, पर..."

"तब फिर तुम उसे रोको !" अरूप समझते थे, स्त्रियाँ भी साइकिलें हैं कि ब्रेक लगा दो, रुक जायेंगी।

"क्या ?...मैं रोकूँ ?.. नहीं भैया !...उसे मैं प्रेम नहीं दे सकता तो फिर अगर वह किसी दूसरे से प्रेम की भीख माँगती है, तो कैसे रोकूँ ?" आज जैसे पूरन अपनी केंचुली बदल रहा था। वह ठहर-ठहर कर, बड़े ही सुलझे हुए स्वर में, वही कुछ बोल रहा था जो वह सोचा करता था। वह आराम लेने के लिए कुर्सी पर लेट गया।

"तुम पागल हो गये हो, पूरन !" भैया ने ग़ुस्से से कहा।

"आज से नहीं भैया, मुद्दत से पागल हूँ !" पूरन मानो बदला लेने पर तुला हुआ था।

"तुम्हें कुल की लाज भी प्यारी नहीं ?"

"मुझे तो भैया, किसी तरह की लाज और शर्म नहीं आती !... न जाने कितने दिन हुए, मेरी अनुभूति ही कुचल गयी।...मुझे अब कुछ नहीं प्यारा !" वह कटुता से मुस्कराया और ख़ाली कैरम के तख्ते पर नाख़ून बजाने लगा। वह कनखियों से अरूप को देख लेता था, जो चोट खाये नाग की तरह कमरे में बेचैन टहल रहे थे। वह वैसे ही बोर्ड पर गोटें जमाता रहा। आज उसे कुछ विजय की अनुभूति से

बेकली हो रही थी। वह अपने दुख का बदला कितने जुनून से ले रहा था और किस सरलता से! कभी-कभी चोट खायी चिड़िया भी शिकार खेल जाती है। शेर को फाँसने के लिए बकरे की बलि देनी ही पड़ती है। पूरन ने जान की बाज़ी लगाकर यह मैदान जीता था। बकरा तो जान से गया, पर शेर बुरा फँसा था!

लछमन ने उसी समय उसे एक पत्र लाकर दिया। पूरन उसे खोल-कर रोशनी में देखने लगा। यदि अभी-अभी आपको कोई खबर दे कि भारत स्वतन्त्र हो गया, बिलकुल स्वतन्त्र और आप राष्ट्रपति चुने गये हैं या अंग्रेज़ सुनें कि सारी जर्मन सेना पर आकाश से सूरज का एक दहकता हुआ टुकड़ा गिर पड़ा और वह जलकर राख हो गयी, और हिटलर को रीछ ने फाड़ खाया तो उनका क्या हाल हो? बस, वही पूरन का हाल हुआ! पर वह इतना छिछोरा न था। वह खामोशी से पत्र पढ़कर बोला—"यह लीजिए!" उसने पत्र अरूप के सामने डाल दिया और सिगरेट सुलगाने लगा। न जाने क्यों उसके हाथ काँप रहे थे, लेकिन चेहरे पर मुस्कान खेल रही थी, जैसे किसी बड़ी परीक्षा का परिणाम देखकर दिल और दिमाग़ बेक़ाबू हो जायें।

"मैं जा रही हूँ...मैं आपकी कोई नहीं, फिर भी...शान्ता।"

अरूप के हाथ से काग़ज़ गिर पड़ा। पूरन को बुरा लगा कि पत्नी तो उसकी भागे और छक्के अरूप के छूटें।

"आखिर को वही हुआ। वह चली गयी न?...महेश!..." अरूप सिर से पाँव तक काँप गये। उनकी और उनकी पत्नी की जो दुर्गति होगी उसे वही महसूस कर सकते थे। उन्होंने एक बार पूरन को देखा।

उनके हाथ-पैर और कमज़ोर हो गये। पलक झपकते में सारी कहानी फ़िल्म की तरह आँखों के सामने चलने लगी। वह पूरन का खिले फूल-जैसा चेहरा, शरारत से तड़पती आँखें, जिन्हें देखने को अब वे तरस गये थे। वे उसे ग़ौर से देखने लगे। यह वही था, उनका छोटा भाई पूरन! भाभी का लाडला देवर, अम्माँ का मुँह-चढ़ा सपूत और बच्चों का प्यारा चाचा! इस समय सड़ी-बुसी दवा का कड़ुआ घूँट बना पड़ा था। वह यदि बिगाड़ न दिया गया होता तो इतनी ज़िद उसमें कहाँ से आती? सच है, बचपने से ही उसे हर बात को मनवाने की आदत पड़ चुकी थी और यही कारण था कि वह आकाश के तारों के लिए मचल गया था।

"शान्ता समझदार लड़की थी। आखिर वह क्यों मिट्टी के ढेर में मोती ढूँढ़ने की कोशिश करती?" पूरन ने मौन भंग किया। वह अपनी विजय की भावना को दबा रहा था।

"पूरन, तुम्हें क्या हो गया है? यह तुम क्या कह रहे हो?" अरूप को स्वयं पता नहीं था कि वह और क्या कह सकता था।

"मर चुका!...आपका पूरन तो कभी का मर चुका! और अब इस मुर्दा पूरन की बारी है। भैया, मन चाहे जो कह लो। आत्मा तो कभी की मर चुकी। यह मुर्दा मिट्टी हाज़िर है। यह भी अगर किसी काम आ सके तो मौजूद है। पर याद रहे, भैया! यह शरीर बिलकुल खोखला है। नाम को भी दम नहीं!" वह प्रतिशोध की भावना से मुस्कराया।

"मैंने...तुम्हें अपने बच्चे की तरह समझा पूरन, तुम ऐसे

कहते हो, जैसे मैंने जानकर ही सब कुछ किया।"

"पर भैया, मैंने कभी कोई शिकायत भी की हो तब न ? जो कुछ भी आपने किया, ख़ूब किया ! घर की लाज के लिए एक मैं क्या, हज़ारों पूरन बलि किये जा सकते हैं !" ताने देना पूरन अब भी न भूला था।

"पूरन ! ..मेरे बच्चे !" उनका गला रुँध गया।

"भैया !...इसमें रोने की क्या बात है ? धन्य मानिए कि कुल तो कलंकित होने से बच गया ! हाँ, अब आपका बेटा जवान हो रहा है। भगवान करे वह मेरी-जैसी भूल में न पड़े !"

कितने ही दान-पुण्य करो, यह भगवान की अकड़ नहीं जाती। उदयपुर से भवानी ने बारह राजाओं के सिर माँगे थे। यह भगवान इतना भूखा क्यों रहता है ? इसका पेट है कि नरक की भट्टी, जो भर ही नहीं चुकता ? रोज़ हड़प करता है—हैज़े के मारे, दिक़ के चबाये, प्लेग के मसले, पर उसे कुछ नहीं होता। उसकी 'लाओ' नहीं रुकती। उसको बदहज़मी भी नहीं होती। अब राजा साहब बेचारे किसे छेड़ते थे। आख़िर उन्होंने कौन-सी गाय मारी थी, जो उनकी बहू भाग गयी ? आख़िर अरूप की भोली पत्नी ने क्या पाप किया था, जो उसे चार दिन भूखे रोते गुज़र गये, और अरूप की कनपटियों पर सफ़ेद बाल फूट निकले।

अरूप सिर पकड़कर बैठ गये। और सारा घर ही सिर पकड़कर बैठने की कोशिश कर रहा था। अब क्या होगा ? अब अरूप की औलाद

का क्या होगा ? बहन की ससुराल में भी किस सफ़ाई से नाक कट गयी ! जितनी इस कमबख्त नाक की सेवा करो, ऐंठी ही जाती है ! कीड़े पड़ें ऐसी नाक में !

पूरन प्रतिशोध की भावना से एकदम बहुत बीमार हो गया। उसे दिन में कई-कई बार ख़ून आया, और एक बार तो सभी शान्ता को भूलकर पूरन को मौत के पंजों में से छीनने लगे। माँ का माथा कई बार भगवान के चरणों में गिर पड़ा और अरूप—घर के सेनापति क़िले के बचाव में लग गये। पर क़िला तो ढहे जाने पर बुरी तरह तुला हुआ था, बुरी तरह !

जब मैं छोटी-सी थी तो मैंने सड़क के किनारे एक नन्हा-सा पेड़ देखा। 'इसे अपनी क्यारी में लगाऊँगी,' मैंने उसे पूरी ताक़त से खींचा। नन्ही दुर्बल जड़ें चीख़ीं। तना अकड़ गया, पर मैंने उखाड़ ही लिया। ज़िद्दी जड़ें वहीं रह गयीं। क्यारी में लगाकर मैं उसकी सेवा करने लगी। भर-भर के पानी के लोटे डाले, पर वह तो सूख ही गया। बच्चे तो बच्चे, कभी-कभी अच्छे भले बूढ़े लोग सिड़िया जाते हैं ! पूरन के घर वाले भी जड़ तोड़ चुके थे, पर ज़िद तो देखो कि पेड़ को फिर से लगाने और फल लाने के जतन कर रहे थे। कहते हैं, एक पेड़ ऐसा होता है, जो बिना जड़ के ही लग जाता है। पर पूरन तो बहुत ही साधारण-सा कच्चा पौधा था।

लीजिए, किसी लाल बुझक्कड़ को जड़ का भी खयाल आ गया और वे नये सिरे से पैवन्द लगाने लगे। सबने समझा-बुझाकर अरूप

को गाँव भेजा कि जाकर आशा को ले आयें।

आशा ने दर-दर की ठोकरें खाने के बाद अपने ही गाँव में शरण ली। जब वह अपने टूटे-फूटे घर में पहुँची तो उसका जी चाहा कि उसमें आग लगाकर जल मरे। पर थोड़ी ही देर में गाँव वालों को पता चल गया और उसकी सहेलियाँ-हमजोलियाँ दौड़ पड़ीं। उस पर सवालों की बौछाड़ हो गयी। उसे लगता था कि वह कोई लम्बा-सा सपना देखकर जागी है। और वह जल्दी-जल्दी उसे भूलने की कोशिश करने लगी। उसे पूरन का ध्यान तो आता था, पर उसी तरह जैसे ऊँचे आकाश पर चिपके हुए चमकीले चाँद का। चाँदनी रातें उसकी आँखों में बुरी तरह खटकतीं। रामू की माँ के लाड फिर से शुरू हो गये और रामू भी बालों में चौगुना तेल डाल, छाती निकालकर चलने लगा। वह ध्यान से उसकी भद्दी अदाओं को देखती और फिर उसे पूरन का साफ़-सुथरा चेहरा नज़र आता। वह बिना तेल-फुलेल के चमकते निखरे हुए बालों के गुच्छे, वे सुगन्धित उजले हाथ और मौन याचनाएँ और कहाँ ये अचार की तरह चिपके हुए बाल, खुरदरे बीड़ी की बू में बसे हाथ और नंगी-नंगी इच्छाएँ! लेकिन अगर मेढकी बुलबुल से आँख लड़ाने लगे तो सब यही कहेंगे कि उसे तेज़ ज़ुकाम हो गया है!

"पूरन की तबीयत ख़राब होती जाती है," अरूप ने उसे शान्ता और महेश का नाटक बताये बिना कहा—"माता जी अकेली हैं। तुम्हारी भाभी..." वह शर्माये।

"बहू जी तो अच्छी हैं...बड़े भैया!"

"हाँ...पर पूरन की सेवा-टहल के लिए..."

"मुझे जाने में तो कुछ नहीं। रामू की माँ को ज़रा कम दिखने लगा है।" आशा बहाने कर रही थी। आखिर जब बहू जी मौजूद थीं और दुनिया में नौकरों की कमी नहीं, तो फिर आखिर वह क्यों याद आयी? आम खाये कोई और पात गिने आशा!

"बहू तो...वह मायके गयी हुई है।"

"अच्छा?...क्या कोई...ख़ुशी..." आशा के दिल पर चोट लगी।

"हाँ...वह उनकी माँ बीमार हैं," अरूप सिटपिटाये—"तुम घर चलो, सब मालूम हो जायेगा...आशा..." वह कुछ कहते-कहते रुक गये।

जब पूरन को मालूम हुआ कि आशा आ रही है तो वह झल्ला उठा।

"भाभी!...यह तुम लोग कब तक मेरे संग खेल करते रहोगे... तुम मुझे चैन से मरने भी न दोगे..." वह बड़बड़ाया। लेकिन भाभी ने उसे ऐसे प्यार से देखा कि वह चुप हो गया। शाम को उसका बुखार और बढ़ गया। वह घबरा-घबराकर बर्राने लगा—"कितनी आग है!... लाल-लाल...भाभी! लाल पर्दा हटा दो। यह लाल फूल काटते हैं दिल को...चमकी से कहो, मेरा सिर घूम गया। इतनी जल्दी-जल्दी न नाचे। उससे कहो, मेरी दराज़ न खोले। वह नहीं आयेगी...वह क्यों आयेगी? क्या मैं उसे खा जाऊँगा?" वह आप-ही-आप

मुस्कराता—"दुबली-पतली लड़की से इतना काम न लिया करें...भाभी ...माता जी से कहो उससे इतना काम न लें।"

"चुप हो जाओ पूरन ! डाक्टर कहता है, इतनी बातें नहीं करनी चाहिएँ।" भाभी डर जाती।

"डाक्टर तो उल्लू है ! वह क्या जाने ? पाजी कहीं का ! मुझे बोलने नहीं देता ! भाभी, वह मुझे देखकर क्या कहेगी ? उससे न कह देना कि बीमार हूँ, सुना ?...वह क्या कहेगी ?"

"आशा आ गयी है, पूरन !"

पूरन के मुर्दा चेहरे पर शर्माने से सुर्ख़ी दौड़ गयी।...भाभी उसे छेड़ रही थी। आज उसे आशा के ख़याल से कितनी प्यारी शर्म आ रही थी। लगता था, मरा हुआ जी हल्की-हल्की गुदगुदियों से जी उठेगा। उसने एक बार अपने सूखे हुए हाथों को देखा। कितने भद्दे हो गये थे ! पर यह पैर क्यों चिकने और तन्दुरुस्त हो गये थे ! उसे अपनी पतली-पतली टाँगों में ये तन्दुरुस्त पैर बहुत बुरे लगे। उनकी तन्दुरुस्ती कितनी घिनावनी थी ! पीली-पीली, पीप के रंग की !

जब भाभी चली गयी, तब उसमें जान आ गयी। यह भाभी बड़ी नटखट थी। वह लड़खड़ाता हुआ घिसिटकर आईने के पास पहुँचा। लेकिन उसके ऊपर जैसे छत टूट पड़ी। सूखा-मारा, क़ब्र का मुर्दा ! जैसे किसी पागल की लाश निकल खड़ी हो। वह शरारत, जो आशा के ख़याल से उसके चेहरे पर नाच रही थी, मरघट की भुतनी की तरह उसे और भी भयानक दिखायी पड़ रही थी। वह बड़े ध्यान से प्रकृति की इस कारीगरी को देखने लगा। डरते-डरते उसने सूखी हुई कनपटियों

और गर्दन की नसों को छुआ। मेज़ पर कितनी शृंगार की चीज़ें रखी थीं, पर एक भी तो उस मुर्दे को सजाने के लिए अच्छी न लगी। उसने कंघा उठाया, पर वह बालों से न लड़ सका। बाल और भी अधिक अस्तव्यस्त और घने हो गये थे। दरवाज़े पर खटका हुआ और वह जल्दी से मुड़ा।

आशा ने बड़ी मुश्किल से उस भयानक आकृति को देखकर स्वयं को रोका। लेकिन वह उसे लड़खड़ाता देखकर जल्दी से लपकी। उन सूखे-सूखे हाथों ने उसे भूखे जन्तु की तरह जकड़ लिया और सूखी पसलियाँ गुट्ठल छुरियों की तरह उसकी छाती में घुसने लगीं। वह एक बार अपनी पूरी शक्ति उसे सँभालने में लगाकर पलंग के पास ले गयी। पूरन समझा, वह उसे अलग कर रही है और वह पागलों की तरह उसे भींचने लगा।

यह वही पूरन तो था, जिसकी उँगली भी अगर आशा से छू जाती थी तो उसके शरीर में आग भड़क उठती थी और उस आग में वह तमतमा जाती थी। पर आज जैसे कोई बर्फ़ के कोड़ों से उसके सारे शरीर को धुन रहा था। लेकिन आज वह सब कुछ भूलकर बेहयाई से उससे लिपट गयी। नाज़-नखरों का समय बीत चुका था। उसने उसके सूखे-मरे हाथों को कलेजे से लगा लिया और उसके ख़ाली ढोल-जैसे सीने में मुँह धँसाकर उसमें गर्मी ढूँढ़ने लगी। उसे महसूस हुआ, जैसे उस हड्डियों के पंजर में इंजन चलने लगा। दबी हुई घुटी-घुटी गर्मी, एक ख़ामोश शोर, ज्वालामुखी पहाड़ के आँचल में जैसे पिघली हुई आग, चिंघाड़ती हुई घायल बिल्ली की तरह, और फिर भूकम्प जैसे

झटके, जिन्होंने तख्ता उलट देने का जैसे निश्चय कर लिया हो। एक झटके के साथ सारी व्यवस्था गड़बड़ हो गयी और आग बह निकली। वह चौंककर उठी। उसका सिर घूम रहा था, जैसे किसी ने बहुत-सी चकफेरियाँ देकर उसे चटियल मैदान में छोड़ दिया हो। उसने सहारा लेने का प्रयत्न न किया। जल्दी से उसने कमरे की कुण्डी चढ़ायी और मेज़ पर से छाती पर मालिश करने की पूरी शीशी हलक़ में उँडेल ली। थूकती, खाँसती वह जल्दी-जल्दी बिस्तर को ठीक करने लगी। उसने सारी कुर्सियाँ और मेज़ें पलंग के चारों ओर घसीट दीं। फिर जल्दी-जल्दी अल्मारियों में से कपड़े निकाल-निकालकर उन पर फैला दिये। बीच की दराज़ में जो उसने हाथ डाला तो जैसे उसे साँप ने डस लिया। सूखे हुए सुर्ख़ गुलाब अब भी सफ़ेद कपड़ों में दबे रखे थे। उसने बड़े प्यार से एक-एक पत्ती उठायी और उन्हें पूरन के सीने पर रख दिया। कोने से रात को धीमी रोशनी देने वाला लैम्प उठाकर चारों तरफ़ तेल छिड़का और फिर वह एक नयी दुल्हन की तरह सेज पर चढ़ गयी। ओह!...शर्म की तो फ़ुरसत भी नहीं थी! उस मुर्दा ख़ून के लुआब से घिन भी न आयी जो उसकी ठोड़ी पर बह आया था। कोई उसका कलेजा काँटेदार नाख़ूनों से छील रहा था। हाथों की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। उसने दियासलाई लेकर चारों तरफ़ तेल में आग लगा दी और पूरन की गोद में लेट गयी, उन्हीं सूखे हुए फूलों के पास जो उसके सीने पर लाले की क्यारियों की तरह लहलहा रहे थे।

●

दीवाला

आठ बरस तक डाकखाने में बाबूगीरी करने के बाद अचानक एक दिन अपने और अपने परिवार के भविष्य की चिन्ता किये बिना राजेन्द्र सिंह बेदी ने अपनी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। उनकी कहानियाँ और उनका अनोखा अन्दाज तब उर्दू में काफ़ी प्रसिद्ध हो चुका था और आलोचकों की दृष्टि में उनकी शैली एकदम उनकी अपनी थी, जिसका अनुकरण असम्भव था।

बेदी एक दिन दिल्ली की एक चायपार्टी में बुखारी साहब से मिले जो उस ज़माने में ऑल इंडिया रेडियो के कंट्रोलर थे। वे बेदी की कला से इतने प्रभावित थे कि जब उन्हें पता चला कि बेदी नौकरी छोड़ आये हैं तो तत्काल उन्होंने बेदी को अढ़ाई सौ रुपये पर लाहौर स्टेशन के लिए नाटककार के रूप में नियुक्त कर दिया। साठ रुपये की क्लर्की से अढ़ाई सौ रुपये की नौकरी—वह भी रुचि के काम की—यह एक बहुत बड़ा क़दम था।

लेकिन बेदी ने उसके बाद कई ऐसे कदम उठाये। अच्छी-से-अच्छी नौकरियाँ कीं और छोड़ीं। दिल्ली और कश्मीर से होकर बम्बई पहुँचे और वहाँ की फ़िल्मी दुनिया में अपना सिक्का जमाया। इस भरपूर ज़िन्दगी ने उन से अनोखे नाटक और कहानियाँ लिखवायीं।

दीवाला राजेन्द्र सिंह बेदी की बेमिसाल कहानियों का दूसरा संग्रह है, जिनमें उनकी कुछ जगत-प्रसिद्ध कहानियाँ संकलित हैं।